संसार-संकट

लेखक

पं० कृष्णकान्त मालवीय।

प्रकाशक :—

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

संवत् १९७७

प्रथमवार १०००] [मूल्य १॥)

श्रीयुत शिवप्रसाद जी गुप्त

प्रिय बन्धु,

हिन्दू विश्वविद्यालय के शिलान्यास के महोत्सव के अवसर पर एक दिन हम, तुम और हम लोगों के एक "अध्यापक" मित्र बजरे में बैठे गंगा की सैर कर रहे थे, देश दशा की चर्चा हो रही थी, उस समय तुमने हमसे यह इच्छा प्रकट की थी कि हिन्दी में एक ऐसा समाचारपत्र निकलना चाहिये जिसमें सिर्फ अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की चर्चा हो और भारत या भारत-सम्बन्धी चर्चा उसमें किसी प्रकार की न हो। हमने कहा था यह सहज सम्भव नहीं क्योंकि हिन्दी में अभी ऐसे पाठकों की संख्या अधिक नहीं जो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में इतनी दिलचस्पी लेते हों साथ ही हिन्दी में ऐसे लेखक भी अधिक नहीं जो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को समझते हों और पत्र के कलेवर को भरने के लिए रोचक लेखों को भेज सकें।

हमने कह तो इस प्रकार दिया था किन्तु तुम्हारी बात के मर्म और महत्व को हम भूल नहीं सके। युद्ध-काल के समय में अवसर पाते ही अभ्युदय में हमने "संसार-संकट"

शीर्षक लेखमाला शुरू कर दी। इस लेखमाला में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की ही चर्चा थी। खेद है अनेक विघ्नों के उपस्थित हो जाने से हम उसे बहुत दिनों तक जारी न रख सके। वह अधूरी ही रह गई। लेखमाला के १०० पृष्ठ पुस्तकाकार छप चुके थे इस कारण उसे किसी प्रकार हमको पुस्तक का रूप देना ही पड़ा। पुस्तक इस योग्य नहीं कि तुमको या किसी को समर्पित की जाय, वह जैसी लिखी जा सकती थी वैसी लिखी भी नहीं गई फिर भी बिना तुम्हारी आज्ञा के मैं इसे तुमको समर्पित करता हूं क्योंकि तुम्हारे कारण यह लिखी गई और तुम एक मित्र की हैसियत से मित्र की पुस्तक को हीनताओं को विशेष उदाहरण की दृष्टि से देखोगे।

तुम्हारा,

कृष्णकान्त मालवीय।

प्रस्तावना ।

आज "संसार-संकट" लेकर मैं आप लोगों की सेवा में उपस्थित होता हूं। इसका प्रायः आधा अंश लेखमाला के रूप में "अभ्युदय" में प्रकाशित हुआ था। हिन्दी संसार ने इस लेखमाला को बहुत पसन्द किया और अनेक मित्रों ने यह इच्छा प्रकट की कि लेखमाला पुस्तक रूप में प्रकाशित कर दी जाय। मित्रों के अनुरोध से और साथही साथ इसलिए भी कि "संसार-सङ्कट" अभी दूर नहीं हुआ है, शीघ्रही दूसरा भीषण महाभारत होगा, जिसमें संभव है भारत भी उत्कृष्ट भाग ले, हमने इन लेखों को पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर देना अच्छा समझा। पुस्तक प्रकाशन का अर्थ यह भी है कि हमारे भारतवासी भाइयों को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और स्थिति का कुछ ज्ञान हो जाय और वे भले प्रकार देखलें कि संसार की दशा क्या है, कैसी है और क्यों है ?

लेखमाला का जो अंश "अभ्युदय" में प्रकाशित हुआ था, वह घटनाएँ जिस समय हो रही थीं लिखा गया था, शेष अंश बहुत समय के बाद, प्रायः अभी लिखा गया है जब घटनाओं का चिन्ह स्वरूप भी मस्तिष्क में नहीं रहा था। इस कारण अनेक बातों को जिनको हम लिखना चाहते थे

नहीं लिख सके और जो लिखी भी गई हैं वह समुचित रूप में नहीं हैं ।

पुस्तक जिस रूप में प्रकाशित हो रही है उससे हम सन्तुष्ट नहीं फिर भी हमने पुस्तक को पाठकों की सेवा में उपस्थित कर देना निश्चित किया इसका कारण यही है कि हमारी अभिलाषा है कि पाठक पुस्तक के मूलतत्वों को हृदय-पटल पर अङ्कित कर लें और पार्थिव संसार की तथ्य बातों को जान लें ।

हमारा यह विश्वास है कि संसार में शान्ति न स्थापित हुई है और न होगी । हमारा यह भी विश्वास है कि संसार में समय समय पर अभी युद्ध होगा । हमारा यह दृढ़ निश्चय है कि संसार का चक्का घूम गया है और संसार के रङ्गमंच पर पूर्वीय देश प्रधान नायकों का अभिनय करते शीघ्रही दिखाई देंगे । हमारा ख़्याल यह भी है कि संसार में अब जो महाभारत होगा उसमें एक दल का प्रधान योद्धा जापान होगा । यह भी सम्भव है कि जापान को रूस और जर्मनी की सहायता प्राप्त हो ।

भारतवासियों को सावधान रहना है । उनको इस ऐतिहासिक प्रमाण की सत्यता में विश्वास रखना है कि सभ्यता और साम्राज्य का सूर्य देशों और राष्ट्रों की भौगोलिक स्थिति के अनुसार एक के बाद दूसरे देशों में उदय हुआ है । सभ्यता और साम्राज्य का सूर्य सब से पहिले भारत में उदय हुआ था, संसार के गोलार्ध में एक के बाद दूसरे देशों में घूमता हुआ वह अपनी प्रखर किरणों को चीन में फैला रहा है । चीन के बाद समुद्र हैं और फिर भारत है ।

भारत का भाग्योदय शीघ्र ही निश्चित है। स्वतंत्रता का वायु ज़ोरों से बह रहा है, स्वराज्य रूपी पक्षी का कलरव आस-पास के राष्ट्रों में सुनाई दे रहा है। हमको सचेत हो जाना चाहिये, यही भारतवासियों से हमारी विनीत प्रार्थना है।

हम इङ्गलैंड, फ्रान्स, रूस, जर्मनी, अमरीका, जापान चीन या किसी राष्ट्र के बैरी या मित्र नहीं। हमने यथाशक्ति न्यायपूर्वक सबके गुण दोषों का वर्णन किया है। यदि किसी के संबन्ध में कहीं हमने कटु शब्दों का प्रयोग किया है तो उसका कारण वैमनस्य, अप्रीति या विरोध नहीं है। हमारा यह विश्वास है कि युद्ध वर्तमान सभ्यता का फल था। इन्द्रियपरायणता-मय सभ्यता में, जहाँ धन सब कुछ है, जन-संख्या की वृद्धि का ठिकाना नहीं है, स्त्रियाँ बच्चा पैदा करने की कलें हैं और बच्चों के सुख, स्वतंत्रता और समुचित देखरेख में पालन का प्रबन्ध नहीं, जहाँ गर्भवती माताएँ पुतलीघरों में दिन रात परिश्रम कर इतना भी पैदा नहीं कर सकतीं कि कुटुम्ब का उचित पालन हो, जहाँ स्त्री और पुरुष श्रमजीवियों को केवल चिन्ताओं से प्राण छुटाने के लिए मादक वस्तुओं की शरण लेनी पड़ती है, जहाँ पेट पालन के हेतु, गरीबी के कारण युवतियों को अपना सतीत्व बेचना पड़ता है, जहाँ नित्य वृद्धि प्राप्त करती हुई जनता के लिए नूतन स्थानों पर कब्ज़ा करना ज़रूरी है, जहाँ करोड़ो श्रम-जीवियों के माल की बिक्री के लिए नित नये बाज़ारों को मुट्ठी में करना आवश्यक है, जहाँ एक घर में कुबेर का धन है, कुत्तों को भी बढ़िया से बढ़िया भोजन मिलता है और परोस में मानव बच्चे कुभोजन और खाद्य वस्तुओं की कमी से मर रहे हैं वहाँ युद्ध न हो तभी आश्चर्य है।

प्रयाग के प्रसिद्ध कवि "अकबर" साहब ने बहुत दिन हुए पश्चिमीय संसार को यह कह कर

"दयार मग़रिब के रहने वालों !
खोदा की बस्ती दुकाँ नहीं है !!
खरा जिसे तुम समझ रहे हो !
वोह अब ज़रे कम अयार होगा !!
तुम्हारी तहज़ीब अपने हाथों से !
आपही खुदकुशी करेगी !!
यह शाख नाज़ुक पै आशियाना !
बना जो नापायदार होगा !!

चेतावनी दी थी। बात वैसीही हुई है। पश्चिमीय सभ्यता ने अपने ही हाथों से आत्महत्या आरंभ कर दी है, मवाद कुछ कुछ निकला है, किन्तु फोड़े से बदबू अभी गई नहीं। यदि अब भी राजनीतिज्ञों की आँखें नहीं खुलतीं, यदि राजनीति में अब भी पवित्रता, सत्य और न्याय को स्थान नहीं दिया जाता, यदि कमज़ोर और हीन बच्चों का पैदा करना अब भी बन्द नहीं होता, यदि रुपया अब भी सर्वोपरि माना जाता है और समस्त मस्तिष्क नाशकारी आयोजनों की खोज और बनावट में ही खपता है, यदि मनुष्य दूसरे मनुष्य को गुलाम बनाकर रखने में अब भी नहीं सकुचाता, तो एक नहीं सैकड़ों युद्धों का होना अभी निश्चित है?

युद्ध को रोकने के लिए सब से पहिले हमको जन-संख्या-वृद्धि को रोकना होगा, जिसमें बढ़ती हुई जन-संख्या के बसाने और भोजन के लिए हमको नूतन स्थानों और बाज़ारों की ज़रूरत न पड़े, इसके बाद हमको स्त्रियों के मानवी स्वत्व

स्वीकार करने होंगे, हमको यह मानना होगा कि यदि किसी बात में पुरुष श्रेष्ठ है तो कुछ बातों में स्त्रियाँ भी श्रेष्ठ हैं। हमको स्त्रियों को संसार रूपी नैया की बराबर की खेवैया बनाना होगा और यह सदा के लिए तय कर देना होगा कि गर्भ का धारण करना, न करना या कब करना सर्वथा स्त्रियों का हक़ है। इन बातों के साथ ही साथ हमको यह भी स्वीकार करना होगा कि किसी बली से बली राष्ट्र को यह अधिकार नहीं कि कमज़ोर से कमज़ोर राष्ट्र को वह गुलाम बनाकर रक्खे।

संसार में हम लोगों को कृषकों और श्रमजीवियों की प्रधानता भी स्वीकार करनी होगी। जब तक राष्ट्रीय फैसलों में इन समुदायों का हाथ न होगा संसार की वर्तमान स्थिति में परिवर्तन असंभव है।

किन्तु इन सब बातों से अधिक आवश्यकता संसार को न्याय और धर्म के मार्ग पर ले चलने की है। संसार की राजनीति में जब तक स्वार्थ प्रधान है, जब तक बड़े बड़े राजनीतिज्ञों का मूल्य है और वह प्रलोभन के शिकार बनाये जा सकते हैं, जब तक राष्ट्रों की किस्मत का फैसला कुछ इने गिने हाथों में है तब तक युद्ध का न होना ही आश्चर्य है।

हमको विश्वास नहीं कि संसार की वर्तमान स्थिति में किसी निकट भविष्य में न्याय या धर्म का भाव कभी प्रबल या प्रधान हो सकता है, इसी लिए हमारा ख्याल यह है कि अभी कुछ दिनों तक कम से कम ज़रूर संसार में संसार-संकट उपस्थित होंगे और महाभारत होते रहेंगे।

यदि इङ्गलैण्ड के लिए भारत, मिश्र, तिब्बत, फारस तथा अन्य नूतन स्थानों के मसले हैं तो अमरीका के लिए सेन्ट

डोमिङ्गो, हैयाटी, मैक्सिको, फिलीपाइन, और हबशियों के मसले कम नहीं। जापान के लिए कोरिया है, शांटुङ्ग है, मंचूरिया, साईबीरिया और प्रशान्त महासागर के द्वीपों का रोना ही क्या? कोई राष्ट्र दुग्ध का धोया हुआ नहीं है और सभी अन्याय और स्वार्थ से प्रेरित हैं। फ्रान्स, जर्मनी, रूस, टर्की, चीन जिसको देखिये वही, अन्याय कर रहा है या अन्याय का शिकार है। यह सब होते हुए संसार में शान्ति बिराज नहीं सकती। एक अलसेसलोरेन के कारण यह महाभारत संसार को देखना पड़ा अब संसार में कितने ही अलसेसलोरेन पैदा हो गये हैं। इन अलसेसलोरेनों के रहते शान्ति कैसे बिराज सकती है?

एशिया भी जाग रहा है। पूर्वीय देशों के साथ पश्चिमीय देश जो अन्याय कर रहे हैं वह भी पूर्वीय संसार को असह्य हो गया है। पश्चिमीय प्रदेश अपनी शक्ति का ह्रास देखना पसन्द नहीं करेंगे। वह अपना पुराना प्रभुत्व कायम रखना चाहेंगे और अन्यान्य पथ से मुह नहीं मोड़ेंगे। दूसरी ओर पूर्वीय देश अपना सर उठाना चाहेंगे इस लिए भी संसार में अभी स्थायी शान्ति नहीं स्थापित हो सकती।

स्थायी शान्ति के लिए राष्ट्रों और राजनीति में न्याय तथा उदारता का अधिक आदर होना चाहिये किन्तु यह तब तक नहीं हो सकता जब तक राष्ट्र स्वयम् सन्तुष्ट नहीं और अपनी अधिकतर आवश्यक वस्तु स्वयम् नहीं पैदा कर लेते।

जन-संख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि के कारण राष्ट्रों को अपनी रियाया के लिए देशों और बाज़ारों पर कब्ज़ा करने के लिए युद्ध ठानना पड़ता है। इस लिए जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं स्थायी शान्ति के लिए ज़रूरी यह है कि

बच्चों की पैदावार

कम की जाय। राष्ट्र-संघ में सम्मिलित होनेवाले राष्ट्रों के लिए यह अनिवार्य रूप से आवश्यक हो कि वे बच्चों की पैदावार कम करें, जिसमें विला नूतन स्थानों पर कब्ज़ा किये हुए स्वतंत्रतापूर्वक अपने राष्ट्र में वह रह सकें। राष्ट्र-संघ को एक यह नियम भी बनाना होगा कि उसके सदस्य राष्ट्रों को वृद्धि-प्राप्त जन-संख्या के निवास के लिए दूसरे देशों पर आक्रमण न करना होगा और न स्थान की कमी की दोहाई देकर उनके निवासी दूसरे राष्ट्रों में जाकर बसने का राग अलापेंगे। यदि अपनी आवश्यक वस्तुओं को सब राष्ट्र पैदा करने लगें, यदि दूसरों की भूमि पर कब्ज़ा करने की ज़रूरत उनको न दिखाई दे तो कुछ समय बाद मिलजुल कर प्रेम सहित सब राष्ट्र संसार में रह सकते हैं किन्तु यह सब सहज सम्भव नहीं। कम से कम इन बातों के लिए सैकड़ों हज़ारों वर्ष चाहियें इसलिए शान्ति के भारी भ्रम के धोके में आकर किसी राष्ट्र का यह समझना कि युद्ध न होंगे और निश्चेष्ट पड़ा रहना बुद्धिहीनता के सिवा कुछ नहीं है।

युद्ध बैठे बिठाये केवल युद्ध के तमाशे के लिए नहीं लड़ा जाता, वह तभी होता है जब स्वार्थ की पूर्ति के लिए अनिवार्य रूप से वह आवश्यक प्रतीत होता है। यूरोपीय महाभारत का होना ज़रूरी था, संसार के सुधार के लिए ही नहीं, इसी लिए नहीं कि सभ्यता के समुचित विकाश के लिए युद्ध आवश्यक हो गया था, पौराणिक भाषा में संसार का भार कम करने के हेतु नहीं और न इसी लिए कि पूर्वीय देशों को सर उठाने का अवसर हो वरन् इसलिए

कि जर्मनी, फ्रान्स, रूस, इङ्गलैंड सब के लिए युद्ध करना, लड़ना, आगे बढ़ना या मरना अनिवार्य रूप से आवश्यक हो गया था। पाठक इस बात को भले प्रकार जान लें, इस लिए यह आवश्यक है कि वे यूरोपीय महाभारत के कारणों को अच्छी तरह से समझ लें। "मर्यादा" में जेनवा-प्रवासी एक राजनीतिज्ञ ने युद्ध के आरंभ काल में इस सम्बन्ध में कुछ पृष्ट लिखे थे। लेख तथ्य बातों से भरा हुआ था। "यूरोपीय महाभारत के कारण" शीर्षक भाग में प्रथम १६ पृष्ठ इसी लिए "मर्यादा" से हमने उद्धृत कर दिया है। कारणों को भले प्रकार सोचने और समझने से यह मालूम हो जायगा कि किसी न किसी रूप में यह कारण अभी बहुत दिनों तक बने रहेंगे और इसलिए संसार को युद्ध के लिए सदा तैयार रहना होगा।

यूरोपीय महाभारत के कारण

That any one should act in Politics out of complaisance or from a sentiment of Justice, others may expect from us but not we from them. Every Government takes solely its own interest as the standard of its actions, however it may drape them with deductions of Justice or sentiment. My belief is that no one does anything for us unless he can at the same time serve his own interests.

Bismark

सर्वः स्वार्थम् समीहते ।

पाठकवृन्द! इस लेख के द्वारा आपसे बातें करनेवाला न अंगरेज़ है, न फ्रेंच, न जर्मन, न रूसी और न इनमें से किसी का अंध पक्षपाती या किसी की प्रजा ही। वह तटस्थ देश का निवासी है और युद्ध को भी एक तटस्थ ही की भाँति वह देखता है। वह स्वतंत्र है, उसके भाव स्वतन्त्र हैं, उसके विचार स्वतन्त्र हैं और यथाशक्ति स्वतन्त्रता से ही अपनी बातों को कहने के लिए आज वह आपके सामने उपस्थित है।

आप कहेंगे इसका सुबूत क्या है । ठीक है इस शताब्दी में बिना प्रमाण कोई बात मानी नहीं जा सकती । अब "बाबा वाक्यं प्रमाणं" के दिन गये । कोई बात जब तक वह बुद्धि में न आजाय मानी नहीं जा सकती, उसका कहनेवाला स्वयम् विधाता ही क्यों न हो ।

अच्छा तो सुनिये ! सारा संसार इस बात की घोषणा कर रहा है कि इस युद्ध का सारा उत्तरदायित्व जर्मनी पर है, जर्मनी की ही स्वार्थपरता और जातीय अभिमान के कारण युद्ध हुआ किन्तु हम कहते हैं कि युद्ध के लिए उत्तरदायी अकेला जर्मनी नहीं है। युद्ध के लिए जितना जवाबदेह जर्मनी है उससे रूस और फ्रांस एक रत्ती भर कम नहीं। साथ ही साथ जितनी ये बातें सत्य हैं उतनी ही सत्य यह बात भी है कि युद्ध के लिए कोई भी दोषी नहीं, समय की मर्ज़ी कुछ ऐसी ही थी । रूस के लिए सर्विया का पक्ष लेकर युद्ध की तैयारी न करना और जर्मनी के लिए आस्ट्रिया का हिमायती न बनना अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारने के बराबर होता । एक दृष्टि से फ्रांस पर कुछ दोष मढ़ा जा सकता है किन्तु जब आत्म-रक्षा का सवाल उठता है, जब हम यह ध्यान में रखते हैं कि प्रत्येक राष्ट्र का पहिला धर्म हर प्रकार से आत्मरक्षा को प्रधानता देनी है, जब हम देखते हैं कि Politics are life, and like all life will adhere to no rule राजनीति जीवन स्वरूप है और जीवन के समान उसके लिए भी कोई नियम स्वयम-सिद्ध नहीं है, हमें यह विवश हो मानना पड़ता है कि फ्रांस और इङ्गलैण्ड ने भी युद्ध में सम्मिलित हो अपने कर्तव्य का ही पालन किया ।

यहां पर एक बात हम और साफ साफ कह देना चाहते हैं। राजनीति, कूटनीति, जैसा कि उनके नामों से प्रकट है, नीति हैं। समयानुसार, आवश्यकतानुसार जो ठीक हो वही करना उचित और आवश्यक होता है। जो साधारण पुरुष के लिए बेईमानी है, दग़ाबाज़ी है, झूठ है वही बात किसी राष्ट्र से की जाने पर बेईमानी, दग़ाबाज़ी, झूठ नहीं वरन् राजनीति होती है। इसका कारण भी है ये बातें एक दो के हित के लिए नहीं वरन् राष्ट्र के हित के लिए की जाती हैं।

साधारणतः नियम आदि जो संसार में बनाये जाते और प्रचलित होते हैं वे समाज या राष्ट्र के हित के लिए होते हैं। वे इसलिए बनाये जाते हैं जिसमें समाज या राष्ट्र की नौका बढ़ती रहे। समाज की रक्षा के लिए नियम आदि हैं किन्तु जब समाज के अस्तित्व का ही प्रश्न उठ जाता है तब फिर उन नियमों का आदर कैसे किया जा सकता है जिनसे समाज की रक्षा ही मात्र हो सकती है? जब समाज का अस्तित्व बना रहेगा तभी उसकी रक्षा भी की जा सकती है, तभी उन नियमों का भी प्रयोजन होता है किन्तु जब समाज ही नहीं तब उन नियमों का काम ही क्या? मुख्य प्रश्न है समाज का अस्तित्व, गौण है उसकी रक्षा। ऐसी अवस्था में जो लोग राष्ट्रीय मामलों, राजनैतिक कूटनीतियों में धर्म और नैतिक नियमों को ढूढ़ने का प्रयत्न करते हैं वे भूल करते हैं और व्यर्थ परिश्रम करते हैं।

स्वार्थ की झलक।

इस सम्बन्ध में अधिक न कह कर अब हम अपने विषय पर आते हैं। ऊपर कहा गया है कि इंगलैण्ड ने युद्ध में सम्मि-

लित हो अपना धर्म पालन किया है। आप इसका कारण जानना चाहते होंगे। सुनिये, कहा जाता है कि इस युद्ध में वह केवल इसलिए सम्मिलित हुआ क्योंकि बेलजियम के साथ अन्याय किया गया था। बेलजियम को राष्ट्रों ने सन्धि द्वारा अखंडनीय माना था, यह तय हो चुका था कि लड़नेवालों की सेनाएँ बेलजियम की भूमि पर पैर न रक्खेंगी इत्यादि किन्तु जर्मनी ने इसके विरुद्ध आचरण किया और इसीलिए इङ्गलैंड को मैदान में आना पड़ा। कहने सुनने में यह बात बहुत अच्छी मालूम होती है किन्तु इतना ही सत्य नहीं है। जिस प्रकार से बेलजियम की उदासीनता का जर्मनी ने भंग किया था उसी प्रकार से जर्मनी ने लक्समबर्ग की उदासीनता का भंग किया था। यदि इङ्गलैंड परोपकार के लिए दौड़ा था तो फिर वह लक्समबर्ग के लिए पहिले क्यों नहीं उठा?

राजनीति में धर्म, उदारता आदि को जो स्थान देते हैं वे इस बात का उत्तर दें, और लोगों का कहना तो यही है कि लक्समबर्ग फ्रांस की सीमा पर था, लक्समबर्ग पर जर्मन कब्ज़ा होने से फ्रांस को हानि पहुँच सकती थी इंगलैंड को नहीं और इसीलिए इङ्गलैंड को मैदान में उतरना उतना ही आवश्यक नहीं समझ पड़ा। दूसरे संधि में भी कुछ ऐसी ही शर्तें हैं। इसके विपरीत बेलजियम पर जर्मन कब्ज़ा का अर्थ यह था कि समुद्रतट तक जर्मन सेना पहुंच जाती, यह इङ्गलैंड के लिए हानिकर था और इसलिए मैदान में आना इङ्गलैंड के लिए उतना ही आवश्यक था जितना कि परोस में अग्नि लगने पर अपने घर की चिन्ता।

यही नहीं मि० लुई० ई० वान० नार्मन नाम के एक अमरीकन ने इसी सम्बन्ध में चर्चा करते हुए अमरीकन "रिव्यू आव् रिव्यूज़" में लिखा है कि—

Shortly afterward (1904) a secret understanding was arrived at between the two countries which, despite official denials, is now understood to have provided for British aid to France in case of an attack by Germany. This was the famous "Entante Cordiale or cordial understanding.

अर्थात् १६०४ के कुछ ही समय बाद इंगलैंड और फ्रांस में आपस में एक समझौता हो गया था ;जिसका अर्थ यह था, यद्यपि सरकारी तौर से इसका विरोध ही किया जाता है कि यदि जर्मनी फ्रांस पर हमला करे तो इंगलैंड फ्रांस की सहायता करेगा।

यह दूर की बात है, लिखनेवाला भी अमरीकन है किन्तु देखिये प्रयाग का अंगरेज़ी पत्र "पायोनियर" इंगलैंड के सम्मिलित होने के कारणों का विवेचन करते हुए अपनी १ जनवरी की संख्या में क्या लिखता है। उसने लिखा है:—

Britain was drawn in because we could not face with equanimity *the prospect of the downfal of France* in a war which was not of her seeking, *because we could not afford to see Belgium in the power of a nation that has seldom troubled to disguise its hostile feelings towards us*, finally because we had set our hands and seals to the treaty guaranteeing the neturality of Belgium............

इससे भी यह साफ प्रगट है कि इगलैंड जितना बेलजियम के लिए नहीं जितना फ्रांस के लिए नहीं उतना अपने लिए—क्योंकि फ्रांस और बेलजियम के न रहने पर उसपर भी विपत्ति पड़ने की सम्भावना थी—लड़ा। वह इसलिए भी युद्ध में सम्मिलित हुआ क्योंकि वह देखता था कि रूस साथ है; फ्रांस साथ है, बेलजियम साथ है, हर तरह से पक्ष मज़बूत है ऐसी अवस्था में यह सम्भव है कि जर्मनी की हार से सदा के लिए उसके मार्ग से कंटक दूर हो जाय। चाहे जिस पहलू से देखिये उदारता का जादू आपको मोह जाल में नहीं छोड़ सकेगा।

यह सब होते हुए भी इंगलैंड का हित इसी में था कि वह मित्रों का साथ दे, अपने सदा के वैरी का मान मर्दन करता और अपने अस्तित्व और प्रभुता को अपनी दृष्टि में अविनाशी बना लेता। इसी कारण से हम कहते हैं कि इङ्गलैंड ने युद्ध में सम्मिलित हो अपने कर्तव्य का ही पालन किया।

वस्तुतः युद्ध क्यों हुआ और उसके कारण क्या हैं इसको समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम लोग यूरोपीय राष्ट्रों की स्थिति से परिचित हों और उनके इतिहास का हमें कुछ कुछ ज्ञान हो।

इतिहास।

एक समय कुल यूरोप में रोम का चक्रवर्ती राज्य था। धीरे धीरे अन्तर्जातीय संग्राम हुए और एक एक कर राज्य पृथक पृथक होगये। पहिले राष्ट्र का भाव द्वीपगत था किन्तु बाद में वह जातिगत हुआ। द्वीपगत भाव के स्थान पर जातीय भाव ने अधिकार जमाया और यह विचार फैलना

आरम्भ हुआ कि प्रत्येक राष्ट्र पूर्ण स्वतन्त्रता का अधिकारी है और वह किसी अन्य राष्ट्र से किसी प्रकार कम नहीं। सन् १८०६ में आस्ट्रिया के सम्राट् ने "रोमन सम्राट्" की पदवी त्याग दी और उसी दिन से रोमन साम्राज्य का नामोनिशान दुनिया से मिट गया। इसके बाद यूरोप में नेपोलियन का दौरदौरा हुआ।

१८१५ ई० में नेपोलियन को वाटरलू के युद्ध में सम्पूर्ण रूप से पराजित और बन्दी कर सेंट-हेलना में भेजने के बाद, प्यारी नगरी पेरिस में जो दूसरी बार सन्धि हुई उसमें फ्रांस को वर्त्तमान राज्य और दो एक छोटे छोटे स्टेट्स मिले। इंगलैंड को वेस्ट इन्डीज़ के कई एक द्वीप, उत्ताशा-अन्तरीप, मीरटस, सिलस, और माल्टा द्वीप प्राप्त हुए। आस्ट्रिया को अपने इटली के राज्य-समूह फिर वापिस मिल गये। प्रशिया (आधुनिक जर्मनी) को राइन-प्रदेश, ड्यानजिन और ओयारस राज्य का कुछ अंश लेकर सन्तोष धारण करना पड़ा। ओयारस का बचा भाग भी प्रशिया ने ग्रहण किया। इटली के पिडमान्ट, सेवाय और जनेवा (इन तीनों की शासन-प्रणाली एक हुई) और अन्यान्य क्षुद्र राज्य सब फिर स्वाधीन होगये। उसी समय आस्ट्रियन नेदरलैंड (वेलजियम) हालैंड के साथ मिला दिया गया और एक स्वतन्त्र राज्य की सृष्टि हुई। स्वीडन, नार्वे और डेन्मार्क में पुरातन वंश फिर अधिकारी हुए और आस्ट्रिया के सम्राट् जर्मनी के सम्मिलित प्रदेश समूह के प्रेसीडेन्ट चुने गये। पश्चिमांश की जब यह अवस्था थी, पूर्वांश के ग्रीस, अलबेनिया, थ्रेस, मेसीडोनिया, सर्विया, रूमानिया, मान्टीनिग्रो, बलगेरिया, रूमेलिया, बोस-

निया, हरज़ीगोवाइना इत्यादि इसाई राज्यसमूह आटोमन टर्की के अधिकार में थे। ये सभी देश स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए थोड़ा बहुत उद्योग कर रहे थे। अठारहवी शताब्दी के लेखकगण विशेष कर रूसो, बालटेयर, मन्टेस्क जो चिन्ताधारा प्रवाहित कर गये थे उसके फल से फ्रांस में प्रजातन्त्र शासन प्रतिष्ठित होगया। इसका प्रभाव पर-पद-दलित, अत्याचार-प्रपीड़ित और विगत गौरव ग्रीस और इटली के अधिवासियों पर भी पड़ा।

इसी समय से यूरोपीय राजनैतिक आकाश में Balance of Power "बल साम्य" नामक नक्षत्र का विकाश हुआ। सब राष्ट्रों की दृष्टि इस ओर फिरी कि किसी अन्य राष्ट्र की शक्ति न बढ़ने पावे, जिसमें एक बलवान होकर दूसरे को दबा न सके और जिसमें सब का महत्व एक सा बना रहे। इसी हेतु प्रायः नेपोलियन के बाद से सभी युद्धों के अन्त में राष्ट्रों की पंचायत ही द्वारा मेल, सन्धि आदि हुआ करती थी। इन सब पंचायतों में निर्णायक विचार यही रहता था कि शक्ति बराबर रहे। इस वर्तमान युद्ध का भी एक प्रधान कारण यही "बल साम्य" का अड़ंगा है। दूसरा प्रधान कारण स्लैव (रूस) और ट्यूटन (जर्मन) की प्रतिद्वन्द्विता है। तीसरा और सब से प्रधान कारण एशिया की तथा संसार की अन्य नूतन बाज़ारों को हस्तगत करना है जहां देश में बना हुआ माल बेचा जा सके, और चौथा समुद्र पर समान अधिकार की इच्छा है।

राष्ट्रों की तड़बन्दो।

राष्ट्रों में रोम का सितारा कभी अस्त हो चुका था। उसके

बाद स्पेन, पोर्चुगाल, और डच भी कुछ दिन चमक कर मन्द ज्योति हुए। इनके बाद फ्रांस चमका और नेपोलियन की विचित्र शक्ति से बहुत ऊंचा उठा किन्तु इसे इङ्गलैंड और जर्मनी ने धर दबाया और १९वीं शताब्दी इङ्गलैंड की हुई। जर्मनी, राष्ट्रों की दौड़ में सब के पीछे रंगमंच पर आया किन्तु इसने आते ही १८७० में फ्रांस को पछाड़कर अन्य राष्ट्रों को यह संदेश दिया कि "अब जिगर थाम कर बैठो मेरी बारी आई।"

इस सम्बन्ध में एक बात और पाठकों को हम बतला देना चाहते हैं। इससे पाठकों को यह भी मालूम होगा कि जर्मनी को जर्मनी और बड़े बड़े राष्ट्रों को बड़ा राष्ट्र कौन सी वस्तु बना देती है। जिस समय जर्मन सेना विजय लाभ कर फ्रांस को कुचल रही थी "एडोल्फी थीयर्स" फ्रेंच प्रजातंत्र के प्रेसीडेन्ट यूरोपीय सम्राटों के पास सहायता की भिक्षा मांगते फिर रहे थे। इसी समय में वीयना में उनसे और रैंके नामक जर्मन ऐतिहासिक से भेंट हुई। थीयर्स ने रैंके से पूछा कि सिदान में विजय लाभ कर अब जर्मन सेना किसके विरुद्ध लड़ रही है क्योंकि नेपोलियन तृतीय तो बहुत दिन हुए कैद हो चुका? रैंके (Ranke) ने उत्तर दिया "लुई चौदवें के विरुद्ध।" पाठकों! लुई चौदवां १७१५ में मर चुका था और उपर्युक्त बात १८७० में हो रही थी किन्तु रैंके ने झूठ नहीं कहा था। लुई १४वें ने जर्मन सम्राटों को इतना नीचा दिखाया था कि ५ पुस्त बाद भी जर्मन उस अपमान को भूल नहीं सके थे। लुई १४वें के महल में ही बैठकर जर्मन राजाओं ने जर्मन साम्राज्य की नींव डाली थी। वहीं पर वे एक हुए थे।

१६८१ में लुई ने जो जर्मनों को हराकर अपमानित किया था उसकी आग उसी तरह से १८११ में जर्मनो के हृदयों में बल रही थी।

वास्तव में बात भी ऐसी ही है—

It is a proof of a lively sense of honour if a nation suffers so keenly from a single injury to its pride that the desire for retribution becomes the ruling passion of the people" "Von Bulow"

जो जाति अपना अपमानित होना भूल जाती है, जिस जाति में बदला लेने के लाल लाल जलते हुए अङ्गारे हृदय में हर घड़ी जलते नहीं रहते, जिसे अपनी मान-मर्यादा का ध्यान जाता रहता है और जो सब कुछ भूलकर निश्चेष्ट हो जाती है वह जाति मुर्दा गिनी जाती है और जीवित जातियों में उसकी गिनती नहीं होती। केवल जर्मनो ही में नहीं यही भाव फरासीसियों में है, यही रूसियों में है, यही इटैलियनों में है; सर्वों में है और आज इसके द्वारा भी इस रणरूपी यज्ञ में अच्छी आहुति पड़ रही है।

फ्रांस १८७० को नहीं भूला है, अलसास लोरेन फ्रेंच हृदय पर इस समय भी विच्छु की भांति डंक मार रहा है। फ्रांस के सैनिक आज रूस का साथ देने को उतना नहीं जितना कि अलसास लोरेन को हस्तगत करने और १८७० का बदला लेने को लड़ रहे हैं।

जिस समय इङ्गलैंड और बोर लोगों में युद्ध हो रहा था सारे यूरोप की सहानुभूति बोरों के साथ थी। फ्रेंच जनता भी बोरों की सहायता करने के लिए लालायित थी। उस समय एक अंगरेज मंत्री ने एक फ्रेंच कूटनीतिज्ञ से बातें करते

हुए पूंछा था—"फ्रांस जर्मनी से मिल कर कहीं बोरों का साथ तो न देगा ?"

फ्रेंच कूटनीतिज्ञ ने कहाः—

You may rest assured that so long as Alsace-Lorraine remains German, whatever may happen, the French nation will consider Germany its permanent enemy and will regard any other power merely as an accidental opponent.

अर्थात् जब तक अलसास-लोरेन, जर्मनों के कब्ज़े में है, जो चाहे हो जाय, फ्रेंच जाति जर्मनों को सदा अपना शत्रु समझेगी। अलसास-लोरेन को छीन लेने की अभिलाषा फ्रेंच हृदय से दूर नहीं हुई है। जीवित जातियों के चिह्न ये हैं। जिसमें "हम नहीं, जिस जाति के हृदय में शत्रु के मान मर्दन की अमृतमय अभिलाषा प्रति घड़ी हिलोरें नहीं मारती रहती वह जाति संज्ञाहीन है, और वह अपने पूर्वजों के नाम को इतिहास में फिर से स्वर्णाक्षरों में नहीं लिखवा सकती।

जर्मनी का आदिपर्व।

अब जर्मनी के सम्बन्ध में कुछ समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम जर्मनी का कुछ इतिहास कह दें।

६०० वर्ष पहिले (जर्मनी) प्रशा के निवासी स्लाव भाषा बोलते थे और मूर्तिपूजक थे। प्रायः २५० वर्ष हुए तब प्रशा पर पोलैंड के राजा का शासन था। तेरहवीं शताब्दी में जर्मनों ने ईसाई मत स्वीकार किया। धीरे धीरे जर्मनी ऊपर उठा किन्तु शताब्दियों तक जर्मन राजाओं की कोई पूछ न

थी। वे यूरोपीय अन्य राजाओं का दरबार किया करते थे और उनकी भिक्षा से जीते थे।

किन्तु अपने सम्राटों और राज्यनीतिज्ञों के बुद्धि-बल से जर्मन सितारा एकदम यूरोपीय आकाश में जगमगाने लगा। इसके पहिले तीन युद्धों में जर्मनी विजय लाभ कर चुका था और यही उसके उत्कर्ष का कारण है। अन्य राष्ट्रों, इङ्गलैंड, फ्रांस और रूस को यह तनिक भी नहीं सुहाया, उन लोगों ने जर्मनी के मार्ग में कितनी ही अड़चनें डालीं किन्तु बिस्मार्क चतुरता से राष्ट्र की नौका को इन चट्टानों से टकराने से सदा बचाता रहा।

१८०६ में जर्मनी बुरी तरह से हारा किन्तु सम्राट् फ्रेडरिक और बिस्मार्क हतोत्साह नहीं हुए। १८०७ से १३ तक इन लोगों ने बड़ी चेष्टाएँ कीं और जर्मन जनता भी हर प्रकार से उनके हाथों की कठपुतली होगई। जहां राजा और प्रजा इस प्रकार से एक हो जायँ वहां क्या नहीं हो सकता? १८१३ से १८१५ तक जर्मनी फिर नेपोलियन को कुचलने में लगा और वाटरलू के युद्ध के बाद जर्मन जाति यूरोपीय संसार में आदर की दृष्टि से देखी जाने लगी। १८६६ में जर्मना ने डेनमार्क के दो प्रदेश छीन लिए। फ्रांस और ब्रिटेन ने झगड़ा करना चाहा किन्तु लाचार हो उन्हें चुप रह जाना पड़ा। १८७० में जर्मनी ने फ्रांस पर विजय लाभ की और क्षतिपूर्ण में बहुत से धन के साथ अलसास-लोरेन भी ले लिया।

जिस तरह जर्मनी संसार में युद्ध द्वारा विजय लाभ कर रहा था उसी तरह से सब प्रकार की विद्या और कलाकौशल

की उन्नति भी जर्मनी में शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की कला की भांति नित्यप्रति वृद्धि प्राप्त कर रही थी। जनसंख्या में भी बराबर वृद्धि हो रही थी। सारांश यह कि १८७० से जर्मनी का भाग्य-सूर्य यूरोपीय गगनमण्डल में बराबर ऊंचा ही होता चला जा रहा था।

सन् ७१ में जर्मन साम्राज्य की जनसंख्या ४१,०५,८,७९२ थी। १९०० में यही संख्या ५६,३,६७,१७८ होगई और १९१४-१५ में यह ६६,०००,००० थी। साम्राज्य में इतने निवासियों के लिए स्थान न था और न वह इतने मनुष्यों के भोजनबसन ही का अच्छी प्रकार प्रबन्ध कर सकता था। भीषण समस्या राज-नीतिज्ञों के सामने उपस्थित हुई। देश से निवासी बाहर जाकर दूर देशों में बसने लगे। १८९२ में जर्मनी से ११६,३३९ प्रवासी बाहर गये किन्तु राजनीतिज्ञों को यह बात कैसे पसन्द आ सकती थी? वे यह नहीं चाहते थे कि उनकी शक्ति कम हो, जर्मन उनसे अलग हों और वे दूर देशों में जाकर बसें। राष्ट्री-यता का खून जिनकी रगों में दौड़ रहा है वे कब अन्य देशों, अन्य राष्ट्रों के झंडे की छाया में रहना पसन्द कर सकते हैं? यह ठीक भी है, आज इङ्गलैंड काही यदि कोई राजनीतिज्ञ यह प्रस्ताव करे कि अङ्गरेज़ दूसरे देशों में, दूसरे राज्य के अधीन जाकर बसें तो वह देश का शत्रु समझा जायगा।

अङ्गरेज़ आस्ट्रेलिया में बसेंगे, कैनाडा में बसेंगे किन्तु वे इटली, रूस, फ्रांस में बसना कभी नहीं पसन्द करेंगे। ऐसी अवस्था में जर्मन जनता के भोजन का दो ही प्रकार से उपाय हो सकता था (१) जनता की वृद्धि कम कर, बच्चे कम पैदा कर, (२) साम्राज्य-विस्तार द्वारा।

जर्मन राजनीतिज्ञों से नेपोलियन के पतन का कारण छिपा न था । वे जानते थे कि नेपोलियन, जर्मन या ब्रिटिश सैनिकों से नहीं हारा, उसके हार का एकमात्र प्रधान कारण फ्रेंच स्त्रियां थीं ।

इमली रेक के शब्दों में Those women, all powerful in France, sapped and sapped the popularity of Napoleon whom they called the man-eater

नेपोलियन अपने समय का बड़ा ज़बर्दस्त राजनीतिज्ञ था । फ्रेंच जनसंख्या की वृद्धि देख, जो उस समय रूस से कहीं अधिक थी उसने देखा कि जनता के भोजन के लिए साम्राज्यविस्तार की आवश्यकता है । उसने उनको दूर देशों में जाकर बसने के लिए कहा किन्तु फ्रेंच स्त्रियां पेरिस से बाहर नहीं होना चाहतीं थीं, और मर्द बीबियों के खिलाफ चल नहीं सकते थे । फ्रेंच स्त्रियों ने यह निश्चित किया कि वे अधिक सन्तान न पैदा करेंगी और उसका फल यह हुआ है कि फ्रांस की जनसंख्या जो १८१५ में जर्मनी से कहीं अधिक थी १९१४ में उससे २२,०००००० कम हो गई ।

जर्मन राजनीतिज्ञ इन बातों को जानते थे और इससे वे प्रथम उपाय के विरोधी थे । इसके सिवाय जर्मन स्त्रियां अधिक पुत्रों की माता होना अपना सौभाग्य समझती हैं ।

जनता की वृद्धि के साथ ही साथ कल-कारखाने बढ़े, उनके लिए भी काम करनेवालों की आवश्यकता हुई इस दशा में कोई भी विचारवान राजनीतिज्ञ जर्मनों को दूर देशों में बसने के लिए कब कह सकता था ? इस प्रकार से भोजन सर्वथा व्यापार पर निर्भर हुआ । इस समय जर्मनी में

दूर देशों से व्यापार के द्वारा २८५००००००) रुपया प्रति वर्ष आता है। सन् १६१० में ११८०० जर्मन जहाज़ों ने और ११६६८ अन्य राष्ट्रों के जहाज़ों ने जर्मन बन्दरगाहों में माल उतारा और ११६६२ जर्मन और ११६७८ अन्य राष्ट्रों के जहाज़ माल लेकर बाहर गये। इतने पर भी बढ़ते हुए व्यापार के लिए जर्मनी प्रति वर्ष ७० नूतन स्टीमर और ४० नूतन जहाज़ तैयार करता था।

व्यापार की रक्षा के निमित्त या दूसरे शब्दों में जनता के भोजन की रक्षा के निमित्त यह आवश्यक हुआ कि विदेशी व्यापार रक्षित रहे। इस हेतु जर्मन राजनीतिज्ञों के सामने जल-सेना का मसला उपस्थित हुआ। वान बूलों के शब्दों में The sea became a factor of more importance in national life राष्ट्रीय जीवन के लिए समुद्र पर अधिकार अधिक महत्व का प्रश्न हो गया।

शक्ति का ही संसार में मान होता है। सेना के कारण जर्मनी बलवान था इसलिए स्थल पर उसकी धूम थी किन्तु सामुद्रिक शक्ति न होने से वह लुंठा था इस कारण जर्मनी के लिए जलसेना का रखना जीवन मरण का प्रश्न था। उसके जीवन के लिए; उसके अस्तित्व के लिए यह आवश्यक था कि जिस प्रकार वह स्थल-सेना द्वारा शक्तिशाली था उसी प्रकार वह जल-सेना द्वारा भी शक्ति-सम्पन्न हो। जिस तरह स्थल पर वह निर्भय था उसी तरह समुद्र पर भी वह निर्भय हो जाय।

शक्ति क्या है इसका नमूना भी देख लीजिये। १८६४ में जर्मनी ने डेन्मार्क पर आक्रमण किया। उस समय बर्लिन-

स्थित ब्रिटिश राजदूत ने बिस्मार्क से कहा कि इंगलैंड के निवासी उत्तेजित हो गये हैं और सम्भव है कि विवश हो इंगलैंड को जर्मनी के विरुद्ध अस्त्र ग्रहण करना पड़े। बिस्मार्क ने हंस कर कहा—"खुशी से, तुम लोग हानि ही क्या पहुँचा सकते हो अधिक से अधिक तुम एक दो बम के गोले स्टालप-म्यूड या पिलेन पर गिरा दोगे।"

बात यह थी कि जिस भांति इंगलैंड अपनी जल-सेना के कारण अयोध्य था उसी प्रकार स्थल-सेना के रहते जर्मनी पर भी कोई आक्रमण नहीं कर सकता था। स्थल-सेना इससे अधिक कुछ नहीं कर सकती थी, वह देश के व्यापार या देश की रोटी की रक्षा करने में असमर्थ थी। इसलिए जर्मनी ने जल-सेना की ओर ध्यान दिया।

यहीं से इंगलैंड का वह और इंगलैंड उसका प्रतिद्वन्द्वी हुआ। जर्मनी के लिए यह कर्तव्य भी था।

युवराज की हत्या

"Every nation with sound instincts and a viable organisation of the state, has attempted to extend its geographical position if it has no coast-line. The bitterest and most protracted struggles have always raged round coast-lines and harbours from Careyra and Potedaea, which were the cause of the Peloponesion war to Kavalla, about which the Greeks and Bulgarians quarreled in our times" Nations which could not reach the sea or were forced away from it, silently retired from the universal contest."

यूरोपीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रत्येक जीवन-मय, संगठित राष्ट्र ने जिसका समुद्रतट से लगाव नहीं रहा है इस बात की सदा चेष्टा की है कि वह अपनी भौगोलिक सीमा की वृद्धि कर निकटस्थ समुद्रतट पर कब्ज़ा करे । समुद्रतटों और सुन्दर बन्दरगाहों के लिए आदि काल से भीषण युद्ध होते आये हैं। यह भी एक निर्विवाद सत्य है कि जिस राष्ट्र को इस प्रयत्न में सफलता नहीं प्राप्त हुई, जिसके पास कोई बन्दरगाह नहीं

रहा या जिसका किसी समुद्रतट से लगाव न हो सका उस राष्ट्र को संसार के जद्दोजेहद् और कशमकश से पराङ्मुख होना पड़ा और इस प्रकार त्रस्त होकर अपनी वृद्धि को उसे नमस्कार कर देना पड़ा। इङ्गलैंड और जर्मनी दोनों ही इस सत्य को जानते थे और इसी लिए वे एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी थे और इसी प्रतिद्वन्द्विता के कारण युद्ध का होना संभव हुआ। अनन्तर इङ्गलैंड और जर्मनी की प्रतिद्वन्द्विता, फ्राँस और जर्मनी की शत्रुता और रूस और जर्मनी को इस चिन्ता ने कि बालकन प्रायद्वीप में और पूर्वीय एशिया में प्रधान कौन होगा ट्यूटन जाति या स्लाव संसार को यूरोपीय महाभारत का दृश्य दिखलाने में शीघ्रता की।

किन्तु युद्ध के लिए किसी सन्निकट कारण की भी आवश्यकता थी, वह आस्ट्रिया के युवराज और युवराज्ञी की हत्या से मिल गया। २८ जून सन् १९१४ को सिराजेवो में प्रिन्स फर्डिनेन्ड और उनकी पत्नी डचस आव् होहनबर्ग की हत्या हुई।

बहुत दिनों से आस्ट्रिया और सर्विया में मनमोटाव चला आता था। आस्ट्रिया-हंगरी के साम्राज्य में बहुत सी जातियां सम्मिलित हैं। इनमें सर्व, स्लैव, मेगायर और ट्यूटन जातियां प्रधान हैं। सर्व, स्लैव सभी जीवित जातियों की भांति कट्टर देशभक्त हैं। आस्ट्रिया के बोसनिया और हर्जो-गोवाइना पर कब्ज़ा करने से वे उससे सदा से जलते थे। इसके साथ ही साथ एक ओर से रूस बालकन में अपना प्रभाव बढ़ाने तथा स्लैव जाति का साम्राज्य संगठन करने के लिए उनकी पीठ ठोकता और सहायता करता था और दूसरी ओर

से आस्ट्रिया स्वयम् बालकन में अपना प्रभाव बढ़ाना चाहता था और उसका सहायक जर्मनी था जो एक बड़े टयूटन साम्राज्य के स्थापित करने का स्वप्न देख रहा था और इस कारण से जर्मनी और रूस एक दूसरे के शत्रु थे। अस्तु।

आस्ट्रिया और सर्विया के मनमोटाव के कारण भी अनेक थे और इन्हीं कारणों से यूरोपीय महाभारत का सूत्रपात हुआ। सूत्रपात की कथा इस प्रकार है। बालकन युद्ध के अन्त में आस्ट्रिया के विरोध के कारण सर्विया को एड्रियाटिक के तट पर उसका चिरअभिलिषित बन्दरगाह न मिल सका। उसके क्रोध का पारा चढ़ गया और उसने आस्ट्रिया से बदला लेने की ठानली। सर्वियन साम्राज्य स्थापित करने के लिए धीरे धीरे आन्दोलन शुरू हुआ। यह बढ़ते बढ़ते बासनिया और हर्जोगोवाइना में भी पहुंचा। इतना ही नहीं हंगरी के दक्षिण के प्रान्तों में भी जहां पर स्लैव जातिवाले प्रधान थे इस आन्दोलन ने कदम जमाया। सर्विया की यह चिरवांछना है कि बासनिया और हर्जोगोवाइना के प्रान्त जहां के अधिकतर निवासी सर्व हैं सर्विया के राज्य के अन्तर्गत हों। एक ओर सर्विया यह स्वप्न देख रहा था दूसरी ओर आस्ट्रिया के युवराज एक मैगायर जाति का साम्राज्य स्थापित करना चाहते थे। इसी कारण वे सर्व जाति की वृद्धि के पथ में कंटक थे।

२८ जून

इनके रहते सर्व जाति वालों की दाल नहीं गल सकती थी। इस कारण से उन लोगों ने इनकी हत्या करना निश्चय किया। २८ जून सन् १९१४ को बासनिया की राजधानी में युवराज और युवराज्ञी की हत्या की गई कम से कम कुछ सर्व जातिवाले इस हत्या के षड्यन्त्र

को भली भांति जानते थे यह हत्याकारियों के बयान से स्पष्ट हो गया है । उन लोगों ने अपने बयान में कहा है कि वे पहिले बहुत दिनों तक सर्विया की राजधानी बेलग्रेड में ठहरे थे और युवराज की हत्या करने को उन लोगों को बम के गोले वहीं से मिले थे । हत्याकारियों की जांच से

२९ जून

यह भी विदित हुआ है कि आस्ट्रिया के विरुद्ध सर्विया में एक भीषण षड्यन्त्र रचा जा रहा था । एक सर्व के घर से एक बम का गोला भी बरामद हुआ । यह गोला बिलकुल वैसाही था जिससे युवराज की हत्या की गई थी । एक मिट्रीसिवी Mitricevie नाम के जौहरी के घर में चार गोली भरे रिवाल्वर मिले । कितने ही सर्वों के घर से पिस्तौल बरामद हुए । यह भी कहा जाता है कि बड़े बड़े लोग भी इस षड्यन्त्र में सम्मिलित थे । केब्रीनोविक Cabrinovic और प्रिन्सिप Princip नामी दोनों हत्या करनेवालों ने यह बयान किया कि युवराज की हत्या के निमित्त ही उन्हें बेलग्रेड से बम मिले थे । प्रिन्सिप ने यह भी कहा था कि सर्वियन जाति को जुल्म से बचाने के लिए उसने युवराज की हत्या की ।

आस्ट्रिया वालों को स्वभावतः इस पर बहुत क्रोध आया और उन लोगों ने सर्वों पर क्रोध निकाला । सिराजेवो (Serajavo) में कहा जाता है एक भी सर्व का मकान समूचा न रह गया । हर्जोगोवाइना की राजधानी से खबर आई कि वहां सर्व जाति की बस्ती में आग लगा दी गई और कितने ही मकान जल गये । कितने ही अन्य स्थानों में सर्व और आस्ट्रियनों में मारकाट होगई । आस्ट्रिया-निवासी दुःखी और क्रोधित अवश्य थे किन्तु वे तब भी सर्विया से युद्ध नहीं छेड़ना चाहते

थे । आस्ट्रिया के एक प्रतिष्ठित पत्र ने हत्या के सम्बन्ध में लिखते हुए लिखा था "हत्या निस्सन्देह षड्यंत्र का फल-स्वरूप है । सेराजेवो में गुप्त कमेटियां अवश्य हैं और हत्या करनेवाले बलग्रेड से ज़रूर आये थे । राष्ट्र के हित के लिए यह आवश्यक है कि हत्याकारियों, उनके नेताओं, उनकी कमेटियों का पता लगाया जाय और यह भी मालुम किया जाय कि हत्या करनेवालों के पास इतना रुपया कहां से और कैसे आया । किन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी आस्ट्रिया हंगरी कभी बदला लेने की नीति का अवलम्बन न करेगा और सब कुछ सुबूतों के होते हुए भी हम लोगों का समस्त सर्व जाति वालों पर सन्देह करना और उनकी हत्या करने पर आमादा होना उचित नहीं । इतना ज़रूर होना चाहिये कि षड्यंत्र का पता लगाया जाय, हत्या करनेवालों को सज़ा दी जाय और गुप्त कमेटियां जड़ से खोद दी जायँ ।"

पहिली जुलाई को प्रिन्सिप ने यह स्वीकार किया कि वह अराजक दल का है और उसी दिन लन्दन में यह भी ख़बर पहुंची कि आस्ट्रिया की गवर्नमेंट मामले को हाथ में लेना चाहती है ।

वियना में परराष्ट्र सचिव के कार्यालय में सभा हुई । युद्ध-सचिव काउन्ट बर्चटोल्ड और सैन्यविभाग के भी कितने ही अफ़सर उपस्थित थे । वहां पर युद्ध सचिव ने यह कहा कि हम सर्विया की गवर्नमेंट को यह लिखने का इरादा करते हैं कि वह हत्या के सम्बन्ध में जांच करावे क्योंकि यह मालूम होता है कि यह हत्या सर्विया के षड्यन्त्र का फल है । संभव था कि मामले पर शान्ति के साथ विचार होता किन्तु बलग्रेड के पत्रों को पढ़ कर आस्ट्रियनों का खून जल उठा । उन लोगों ने यह लिखना शुरू किया कि आर्च ड्यूक कार्ल-

स्टीफन ने, जो युवराज को घृणा की दृष्टि से देखते थे, हत्या कराई है।

दूसरी जुलाई को जांच में हत्या करनेवालों ने अपने बयान में दो एक बड़ी मार्के की बातें कहीं। हम उनमें से कुछ बातों को उद्धृत करते हैं। इनसे पाठकों को मालूम होगा कि षड्यन्त्र कैसे आरम्भ हुआ और यह कि सर्व जाति वालों का आस्ट्रिया के प्रति भाव कैसा था।

बयान लेनेवाले जज ने लिखा है कि जांच करने से साफ साफ बिना किसी प्रकार के सन्देह के यह प्रकट होता है कि हत्या करने के लिए एक षड्यंत्र रचा गया था। केब्रिवोनिक और प्रिन्सिप ने पहिले इस बात को स्वीकार नहीं किया था किन्तु बाद में उन लोगों ने यह स्वीकार कर लिया। इस समय हम अन्य ११ षड्यंत्रियों का नाम नहीं बतला सकते क्योंकि अभी उनमें से कितने ही गिरफ़्तार नहीं हुए हैं। ये साम्यवादी या अराजक नहीं हैं। दोनों हत्या करनेवालों ने राष्ट्रीय उद्देश्यों से और सर्व राष्ट्रीय दल के लिए हत्या की है। यह एक ध्यान में रखने की बात है कि प्रिन्सिप के घर में प्रायः १२००) * रुपया सुवर्ण मुद्रा में निकाला। सरकारी वकील का कहना है कि हत्याकारी केब्रिवोनिक ने यह बयान किया था कि मैं बहुत दिनों से इस उद्योग में लगा हुआ था। इस बम से जिससे कि मैंने युवराज की हत्या की मैं वर्तमान राज्य का नाश करना चाहता था। मैं यह जानता था कि युवराज पुराने राज्य के कट्टर सहायक थे और इसलिए मैं उनकी हत्या करना चाहता था।"

* बालकन प्रायद्वीप में सुवर्ण मुद्रा किसी विशेष काम के करने पर दिया जाता है।

वकील ने कहा कि इससे यह साफ प्रकट होता है कि हत्या करनेवाला वर्तमान शासन के अधीन ही राष्ट्र में उचित सुधार का अभिलाषी नहीं था किन्तु वह राजघराने का नाश चाहता था और वह समझता था कि युवराज की हत्या से उसका अभीष्ट सिद्ध होगा।

सरकारी वकीलने आगे चलकर कहा कि प्रिन्सिप ने अपने बयान में यह भी कहा थाः—"यद्यपि मैं बासनिया में पैदा हुआ था किन्तु बचपन ही से मैं सर्व साम्राज्य का स्वप्न देखा करता था। मैं इसे अन्याय समझता था कि बासनिया में जहां के निवासी सर्व हैं किसी विदेशी शक्ति का शासन हो। इससे हमें दुःख होता था कि आस्ट्रिया हमारा पुराना बैरी हम पर ज़ुल्म करे। मैं यह भी जानता था कि सर्व जाति वाले युवराज को सब से अधिक घृणा की दृष्टि से देखते थे। मैं यह भी जानता था कि सर्व जाति का वह जानी दुश्मन था। मैं यह आशा करता हूं कि मेरी हत्या ने सर्व सेना के लिए बासनिया में जो कि सर्व साम्राज्य के अन्तर्गत होना चाहिये घुसने के लिए रास्ता खोल दिया है"।

अन्त में वकील ने कहा कि बेलग्रेड केफ में षड्यंत्र की रचना हुई थी। वहाँ पर लोगों को कई दिन पहिले से युव-राज की हत्या करने की बात मालूम थी। बलग्रेड में यह खुल्लमखुल्ला कहा जाता था कि युवराज जीवित अवस्था में बासनिया से बाहर न जांयगे।

केब्रिनोविक से यह भी पता चला कि उसे बम का गोला सर्व सेना के एक अफसर और "नेरोडना अडब्रेना *"

* आस्ट्रिया के विरुद्ध षड्यंत्र रचनेवाली संस्था का नाम।

के मंत्री मेजर मिलन प्रिबीसिविक से मिला था और उन्होंने कागुजिवेक के शस्त्रागार से गोला दिलाया था। केब्रिनोविक और प्रिन्सिप को ६ बम और ६ पिस्तौल मिले थे और उन्हें यह वादा करना पड़ा था कि वे चार और साथी ढूढ़ लेंगे।

३ जुलाई

तीसरी जुलाई का दिन युवराज और युवराज्ञी के अन्तिम क्रिया का दिन था। लोग बड़े दुःखी थे। जनता क्रोध से पागल हो रही थी। कितने ही लोग सर्व दूतावास पर चढ़ गये, कितनों ही ने हमला कर सर्व झंडे को नष्ट करना चाहा किन्तु पुलिस ने सब को भगा दिया। सडकों पर कहीं कहीं मारपीट भी हो गई। वहां से हटने पर दल का दल रूसी दूतावास की ओर पहुंचा किन्तु वहां पर सिवाय यह चिल्लाने के कि "हत्याकारी सर्व और उनके मित्रों की हत्याकरो" और कुछ नहीं कहा गया। कई दिनों बाद तक सर्व और आस्ट्रियन पत्रों में जली कटी होती रही किन्तु राजनीतिज्ञों की समाज में या अन्य बड़ी जगहों में यह नहीं मालूम होता था कि युद्ध छिड़ेगा।

७ जुलाई

७ जुलाई को वियना में सचिवों ने बैठकर हत्या के संबंध में विचार किया। इसके पहिले सचिवों, चीफ आफ़ दी जनरल स्टाफ और नौ-सेना के कमांडर की कान्फरेन्स हो चुकी थी। अवस्था से विदित होता था कि राजनैतिक स्थिति के सिवाय सैनिक (Military) स्थिति पर भी विचार हुआ है। सात घंटे तक बैठक रही। इससे यह साफ विदित होता है कि बड़े २ मार्कें की बातों पर वादविवाद हुआ था। मुख्य विषय "बासनिया में सर्व आन्दोलन" था। हत्या ने लोगों की आंख खोल दी

थी । बासनिया की स्थिति भयावह थी । सर्व अख़बार हत्या पर संतोष प्रकट कर रहे थे । यह कहा गया कि आस्ट्रिया को यद्यपि वह शान्ति का अभिलाषी है तौभी विवश होने पर तलवार निकालनी होगी । उसी रात्रि में काउन्ट बर्चटोल्ड पर-राष्ट्र-सचिव सम्राट् के पास सचिवों के मन्तव्य को पेश करने गये । यह विश्वास किया जाता था कि आस्ट्रियन गवर्नमेंट कुछ करना चाहती है ।

८ जुलाई

यह नहीं खुला की कौन कौन सी कार्यवाही की जायगी किन्तु "पीस्टर लायड" नाम के पत्र ने अपनी ८ जुलाई की संख्या में प्रकाशित किया कि सर्वियन गवर्नमेंट से ऐसी कोई बात करने को नहीं कहा जायगा जिससे उसके राष्ट्रीय महत्व को धक्का पहुंचे। यह भी लिखा गया था कि बासनिया की सीमा की रक्षा का अच्छा प्रबन्ध किया जायगा ।

१० जुलाई

दस जुलाई को यह प्रकाशित हुआ कि आस्ट्रिया के बूढ़े सम्राट ने मंत्रियों की राय को पसन्द किया है । यह विश्वास किया जाता था कि सिराजेवो में जांच के खतम होने पर सर्वियन गवर्नमेंट को सब बातें बताई जाँयगी और उससे प्रार्थना की जायगी कि वह सर्विया में रहनेवाले षणयंत्रियों को सज़ा दे । उससे यह भी प्रार्थना की जायगी कि वह यह वादा करे कि भविष्य में आस्ट्रियन साम्राज्य में सर्व आन्दोलन-कारियों की वह न केवल सहायता ही न करेगी वरन यथा शक्ति उन्हें दबाने का प्रयत्न करेगी ।

जो लोग सम्राट् और उनके शान्ति के प्रेम से परिचित थे उन्हें पहिले ही से ऐसी आशा थी ।

हंगरी की पार्लामेंट

में काउन्ट हिज़ा ने भी कितनी ही अन्य बातों के साथ ६ जुलाई को कुछ ऐसी ही बातें कहीं थीं जिनसे यह प्रकट होता था कि आस्ट्रिया सर्विया से मेल चाहता था किन्तु सब प्रकार से दब कर मेल करना भी वह उचित नहीं समझता था। वीयना और बुधापेस्ट के समाचार पत्र भी ऐसी ही बातें लिख रहे थे। एक बड़े अफसर ने यह भी कहा था कि हम लोग आशा करते हैं कि सर्विया हम लोगों की उचित बातों पर ध्यान देगा। यदि बलग्रेड हत्याकारियों के पकड़ने और सज़ा देने में हम लोगों की सहायता न करेगा तो फिर वह अपने को सभ्य समाज से बाहर कर देगा जैसा कि उसने किङ्ग एलकज़ेन्डर की हत्या के समय किया था।

उसी दिन कुछ देर बाद यह घोषित किया गया कि आस्ट्रिया सर्विया से कहेगा कि वह बलग्रेड के षणयंत्रियों को समर्पण करदे जिससे अभियुक्तों के साथ ही साथ सिराजेवो में उन पर भी मुकद्दमा चले। यह कोई नई बात न थी। सन् १८६८ में बलग्रेड में प्रिन्स आब्रिनोविक की हत्या के बाद सर्वियन गवर्नमेंट अभियुक्त का, प्रिन्स एलेकज़न्डर कराजिओ-जिविच से, जो कि हत्या में शरीक थे और जो उस समय हंगरी में थे, सामना कराना चाहती थी। आस्ट्रियन सरकार ने सर्वियन गवनमेंट की इच्छानुसार काम किया था और प्रिन्स को बलग्रेड भेजा था। यह सब कुछ कहा जाता था किन्तु सर्वोपर इसका तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा।

आस्ट्रियन लोगों का क्रोध और बढ़ा। यह बिलकुल स्वाभाविक बात थी। आस्ट्रिया वर्षों से सुख और शान्ति की

नींद को तिलाञ्जलि दे चुका था। यह जानते हुए कि पड़ोसी सर्विया, बासनिया और हर्जेगोवाइना पर दांत लगाये हुए है और यह कि आस्ट्रिया उसे फूटी आंख भी नहीं सोहाता उसे किस तरह सुख की नींद आसकती थी? इससे भी अधिक आस्ट्रिया को यह ख़्याल कि सर्व अधिकतर हत्या और षड्-यंत्र के शस्त्र को काम में लाया करते हैं सताया करता था। सर्विया के पत्र खुले शब्दों में इन अस्त्रों की मुक्तकंठ से प्रशंसा किया करते थे।

आस्ट्रिया ही क्यों समस्त यूरोप इस बात से दुःखी था। प्रिन्स एलेकज़ेन्डर और उनकी पत्नी की हत्या को यूरोपवाले नहीं भूले थे। उसीके थोड़े ही दिन बाद सर्बों ने अपने राजा के श्वसुर किङ्ग निकोलस की हत्या की थी। सच तो यह है कि सर्व बदला लेने के लिए मुर्दों को भी नहीं क्षमा करते। १६११ के "बड़े दिन" के समय में सर्बों ने प्रिन्स एलेकज़ेडन्र की कब्र को लूटा, उसमें से प्रिन्स का खोपड़ा निकला और उसे एक घूरे पर फेक उसकी बुरी गत बनाई। स्वभावतः ऐसे पड़ोसी के भय से आस्ट्रिया की शान्ति भंग हो गई थी। यहां पर यह और ध्यान में रख लेना चाहिये कि यह कृत्य वर्तमान राजघराने के शत्रुओं के थे और इनकी जाँच करने को आस्ट्रियन सरकार की आज्ञा प्राप्त कर सर्विया की पुलीस वीयना में जांच करने को आई थी, किन्तु इस समय जब आस्ट्रिया के पत्रों ने यह प्रस्ताव किया कि प्रिन्स फार्डनेंड की हत्या करनेवालों का पता लगाने के लिए बलग्रेड में आस्ट्रियन पुलीस भेजी जाय सर्विया के पत्रों ने इसका विरोध किया और उन लोगों ने कहना शुरू किया कि इति-हास में पहले इसकी नज़ीर कहीं दिखाई नहीं देती। सर्विया

की नीचता से यूरोप इतना परिचित था कि प्रिन्स की हत्या के बाद ही सर्विया के मित्र रूस के समाचारपत्रों ने भी यही लिखा कि हत्या का सूत्रपात अवश्य बलग्रेड में हुआ । यह संभव है कि कानूनी सुबूत इस बात के न मिल सकें किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि समस्त यूरोप यही समझता था कि हत्या में सर्विया का हाथ था । सर्विया के पत्र भी हत्या पर संतोष प्रकट करने से अपने को रोक न सके और इन सब बातों से आस्ट्रियन जनता में बड़ा जोश फैला ।

सर्वियन पत्र इस बात से चिढ़े और उन लोगों ने दिखलाना शुरू किया कि आस्ट्रिया बिना कारण के ही पागल हो रहा है। कुछ अन्य स्वार्थियों और अन्धविश्वासियों ने भी सर्विया के मत का समर्थन किया और कुछ यूरोपवासियों ने आस्ट्रियन सरकार और राजा को दोषी ठहराना शुरू किया ।

इन सब बातों को देख कर कई एक मज़ेदार प्रश्न उठते हैं:—

(१) क्या इङ्गलैण्ड राष्ट्र के विरुद्ध वैसाही आन्दोलन जैसा कि बलग्रेड से बासनिया में चलाया जाता था मिश्र या भारतवर्ष में एक दिन भी चलने देगा ?

(२) क्या किसी अङ्गरेज़ राजकुमार का मिस्र या भारतवर्ष में पैर रखना निवासियों के बिगड़ जाने के लिए काफ़ी समझा जायगा ?

किन्तु सर्व ऐसी ही बातों में शरण ढूंढते हैं । वे यह कर हत्या का पक्ष समर्थन करते हैं कि प्रिन्स फर्डिनेंड को सिराजेवो में सर्व राष्ट्रीय दिन को नहीं जाना था ।

फ्रेंच समाचार-पत्र कहते हैं कि हत्या को वे समझ सकते हैं किन्तु क्या काई पूछ सकता है कि यदि (Pan Islamic

movement) मुस्लिम साम्राज्य का स्वप्न देखनेवाले एलजीरिया के शासक की हत्या करें तो भी उसका अर्थ शान्ति के साथ वे समझ लेंगे? फ्रेंच पत्र यह भी कहते हैं कि बासनिया में सर्बों के साथ अत्याचार किया जाता था और इसी कारण हत्या की गई किन्तु यह बात बिलकुल निर्मूल है। जिनको इधर उधर की कुछ भी बातें मालुम हैं वे जानते हैं कि बासनिया के सर्बों को शिकायत का तनिक भी मौका नहीं था। शिक्षा और चर्चा-सम्बन्धी बातों में उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी साथ ही बासनिया की राष्ट्रीय व्यवस्थापक मंडली "डायट" में उचित संख्या में उनके प्रतिनिधि वर्तमान थे। कुछ लोगों का तो कहना है कि बासनिया में सर्बों को उचित से अधिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। बात तो सच्ची यह है कि बलग्रेड से वे सदा उसकाये जाते थे।

इधर कितने ही वर्षों से आस्ट्रियन सरकार को पड़ोसी सर्विया के कारण सदा चिन्तित रहना पड़ता था। आस्ट्रिया क्या कोई बड़ी शक्ति के जीवन को भी ऐसी स्थिति में सर्विया दुखदाई बना देता। आस्ट्रिया सदा शान्ति का पक्षपाती था इसके विरुद्ध कोई भी यूरोपनिवासी एक शब्द नहीं कह सकता। यह कोई स्वप्न में भी नहीं कह सकता कि आस्ट्रिया सर्विया को किसी तरह से दबाना या खा जाना चाहता था। राष्ट्र की पर-राष्ट्र-संबंधी नीति को सम्राट् जोज़फ अपने हाथ में रखते थे और ये सम्राट् वेही हैं जिन्हें समस्त यूरोप ने एक स्वर से "शान्ति के प्रेमी" की उपाधि से विभूषित किया था। सचिव काउन्ट बर्चटोल्ड भी किसी प्रकार से लड़ाकू प्रकृति के नहीं कहे जा सकते। इनदो मनुष्यों का होना इस बात का काफी सुबूत था कि आस्ट्रिया यथाशक्ति लड़ाई से दूर रहेगा

और कम से कम स्वयम् लड़ने को कभी नहीं तैयार होगा। ऐसी दशा में आस्ट्रियन सरकार के ही लिए नहीं वरन् समस्त यूरोप के लिए यह आवश्यक था कि सर्विया को "पड़ोसी का धर्म" सिखलाया जाता और आस्ट्रिया को शान्ति के साथ सर्विया को शिक्षा देने का अवसर दिया जाता। आस्ट्रिया अन्य राष्ट्रों की भांति शान्ति चाहता था साथ ही साथ अन्य राष्ट्रों की भांति राजकुमारों की हत्या पर वह चुप भी नहीं बैठा रह सकता था। यह कौन कह सकता था कि आस्ट्रिया के चुप रह जाने से सर्विया अपनी प्रकृति को त्याग देता और भीषण हत्या और षड्यंत्रों का बाज़ार भविष्य में गरम न होता।

१३ जुलाई

तेरह जुलाई को प्रातःकाल के समय से ही वीयना में यह खबर फैली कि बलग्रेड में आस्ट्रिया के सचिव बैरन गील के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया गया है। यह भी खबर फैली कि आस्ट्रियन और सर्वियन सरकार का मनमोटाव और भी बढ़ गया है। यह बिलकुल सत्य बात है कि बैरन गील को यह खबर मिली कि उनके दूतावास पर कुछ होनेवाला है और इस खबर को पाकर उन्हों ने सर्विया की पुलीस से रक्षकों के लिए प्रार्थना की। दूतावास की रक्षा की खबर को सुन कर बलग्रेड निवासी आस्ट्रियनों की बस्ती में खलबली पड़ गई। यह ख़बर सुनकर कि सर्व रात्रि को हमला करेंगे कितने ही लोग इधर उधर भागने लगे। ईश्वर की कृपा से रात्रि में कुछ हुआ नहीं। ऐसे ही संकट के समय में बलग्रेड के पत्रों ने यह खबर छापना शुरू किया कि आस्ट्रियन दूतावास में रूसी सचिव की मृत्यु स्वाभाविक रीति से हुई या नहीं? यह भी खबर फैली कि रूसी सचिव के बैग से कुछ बड़े महत्व के कागज़ों का पता नहीं है।

कहना नहीं होगा कि इन खबरों में कोई तथ्य नहीं था और इस बात को सर्वियन सरकार ने भी स्वीकार किया है।

१५ जुलाई। १५ जुलाई को यह खबर फैली कि यदि आस्ट्रियन सरकार की शर्तों को सर्वियन सरकार न मानेगी तो ज़बानी जमाखर्च को छोड़ कर कुछ वास्तविक काम किया जायगा अर्थात् शस्त्र द्वारा शर्तें मंजूर कराई जायँगी।

१६ जुलाई। १६ जुलाई को स्थिति और भी भयावह होगई। सिराजेवो में जांच हो रही थी किन्तु सरकारी तौर पर कोई बात प्रगट नहीं की गई थी। राजनीतिज्ञ भी अँधेरे में थे। स्थिति क्या थी यह सर एडवर्ड ग्रे के पत्र से जो उन्होंने बर्लिन-स्थित- ब्रिटिश राजदूत सर० ई० गोशें को लिखा था विदित होती है। पत्र इस प्रकार था:—

२० जुलाई। मैंने आज जर्मन राजदूत से पूछा था कि वीयना में क्याहो रहा है इसका उसे कुछ पता है या नहीं? उत्तर मिला नहीं किन्तु उसने कहा कि आस्ट्रिया कदाचित कुछ कार्यवाही करेगा और स्थिति अच्छी नहीं दिखाई देती। मैंने कहा कि मुझे कुछ मालूम नहीं है किन्तु मैंने सुना है कि काउन्ट बर्चटोल्ड ने वीयनास्थित इटैली के राजदूत से कहा है कि स्थिति भयावह नहीं है किन्तु आस्ट्रिया मामले को साफ ज़रूर करना चाहता है। जर्मन राजदूत ने कहा कि यह अच्छा होगा यदि रूसी सरकार पञ्च बनकर मामला तय करदे। मैंने यह आशा प्रगट की कि आस्ट्रियन सरकार बिना सर्वसाधारण में यह प्रगट किये

कि जांच से उसे क्या मालूम हुआ है कोई बात न करेगी। राजदूत ने कहा कि उसे भरोसा है कि आस्ट्रियन सरकार वैसाही करेगी। मैंने यह कहा कि ऐसा करना दूसरों के लिए अच्छा होगा। रूसी सरकार भी सर्विया को समझा बुझा सकेगी। जितना ही आस्ट्रिया दबा रहेगा और विवेक से काम लेगा उसका पक्ष उतना ही मज़बूत होगा और मामले के सुलझने की भी उतनी ही अधिक संभावना रहेगी। मुझे युद्ध से घृणा है और मेरी यह कदापि मनशा नहीं है कि सर्विया के कारण किसी भी राष्ट्र को रणाङ्गण में कूदना पड़े। जर्मन राजदूत ने भी इस भाव का पूरा पूरा समर्थन किया।

भवदीय

ई० ग्रे।

२२ जुलाई को सर० ई० गोशें को यह उत्तर प्राप्त हुआ।

२२ जुलाई।

पिछली रात्रि को मैं पर-राष्ट्र-सचिव से मिला था और बात करते समय उन्होंने आस्ट्रिया के झगड़े की ओर भी इशारा किया था। उनकी यह राय थी कि आस्ट्रिया को यह कार्यवाही पहिले ही करना चाहिये थी। उन्होंने इसपर ज़ोर दिया कि झगड़ा आस्ट्रिया और सर्विया में है, अन्य लोगों के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। इन दोनों को आपस में ही बातचीत कर मामला तय करने देना चाहिये। इसलिए आस्ट्रियन गवर्नमेंट से जर्मन गवर्नमेंट का कुछ कहना उनकी राय में ठीक न होगा। उन्होंने यह भी कहा कि बात बात में उन्होंने सर्विया के सचिव से यह कई बार कहा है कि आस्ट्रिया सर्विया में कुछ उचित स्थायी हेलमेल हो जाना चाहिये। अन्त में जर्मन पर-राष्ट्र-सचिव ने

हमसे यह भी कहा कि बहुत दिनों से आस्ट्रिया बराबर सर्विया से दबता और तरह देता जा रहा है ।

२३ जुलाई को सर ई० ग्रे ने सर मारिस डी बनसन वीयना स्थित ब्रिटिश राजदूत को पत्र लिखते हुए लिखा था कि उन्हें आशा है कि दूसरे दिन उन्हें आस्ट्रियन राजदूत काउन्ट मन्सडार्फ से उस चिट्ठी की नकल मिलगी जो कि आस्ट्रिया कल सर्वियन सरकार के पास भेजेगा । उन्होंने यह भी लिखा था कि जो कुछ थोड़ा बहुत हाल अभी मुझे मालूम हुआ है उस पर हम कोई राय नहीं कायम कर सकते किन्तु कम से कम किसी प्रकार की "अवधि" की बात हमें पसन्द नहीं है । उन्होंने यह भी लिखा था कि उन्होंने काउंट मन्सडार्फ से यह कह दिया है कि सब यत्न कर चुकने पर "अवधि" और अन्तिम सूचना देनी चाहिये । आगे चल कर उन्होंने लिखा था कि काउंट मन्सडार्फ ने मुझसे यह कहा कि "इतने दिनों के बीच सर्विया ने अपनी सीमा में किसी भी प्रकार की जांच शुरू की होती तो यह सब न किया जाता । १९०६ में सर्विया ने यह कहा था कि वह आस्ट्रिया के प्रति पड़ोसी का सा व्यवहार करेगा किन्तु अपने वचन पर वह क़ायम न रहा, उसने आन्दोलन को जागृत किया जिसका एकमात्र उद्देश्य आस्ट्रिया को खंडित करना था । ऐसी अवस्था में आस्ट्रिया के लिए यह परम आवश्यक है कि वह अपनी रक्षा करे ।"

२३ जुलाई ।

मैंने कहा इस समय इन बातों पर बहस करने को मैं तैयार नहीं किन्तु मैं यह कहने से न रुक सका कि इसका नतीजा भयावह होगा । सर एडवर्ड ग्रे ने यह भी लिखा था "इस भयावह स्थिति की ओर कई लोगों ने मेरा ध्यान आकृष्ट

किया है, मुझसे यह कहा गया है कि रूस पर जिनका कुछ प्रभाव हो उन्हें उचित है कि वे उसे धीरता और नम्रता से काम करने की सलाह दें। मैंने जवाब में कहा है कि रूस पर कितना प्रभाव डाला जा सकता है यह उसपर निर्भर है कि आस्ट्रिया जो कुछ चाहता है वह कहां तक न्यायोचित है। वर्तमान स्थिति भयावह है। यदि चार राष्ट्र आस्ट्रिया, फ्रांस, रूस और जर्मनी युद्ध में सम्मिलित हुए तो व्यापार और धन का बड़ा नाश होगा।

काउंट मन्सडार्फ को भी यह मानना पड़ा कि नतीजा बहुत बुरा होगा किन्तु उन्होंने कहा कि रूस के हाथ सब बात है। इधर ये सब बातें हो रही थीं उधर जर्मनी के समाचार-पत्रों ने यह लिखना शुरू किया कि आस्ट्रिया की अन्तिम सूचना को जर्मनी और इटली ने पसन्द किया है। "ड्यूश टेग्लीसज़ीटुंग" में काउन्ट रेवन्टलो ने एक लेख लिखते हुए प्रकाशित किया था "यह बिलकुल निश्चय सा प्रतीत होता है कि बिना एक भीषण युद्ध के यूरोप की स्थिति ठीक न होगी।। आगे चल कर छिपे शब्दों में उन्होंने लिखा था कि आस्ट्रिया को युद्ध करना चाहिये साथ ही साथ जर्मन गवर्नमेंट को उन्होंने सलाह दी थी कि ब्रिटिश गवर्नमेंट के आभ्यन्तरिक राजनैतिक प्रश्नों की आवश्यकतानुसार नहीं वरन् अपने भविष्य और मित्र-त्रय की भलाई को सामने रख कर उसे कोई नीति निश्चय करना चाहिये। कुछ लोगों ने इस पर भी इशारा किया था कि इस समय इङ्गलैंड अपने भीतरी झगड़ों में ग्रस्त है, फ्रांस में गोले-बारूद की कमी है, आस्ट्रिया को बालकन के झगड़ों को तय करने का इससे अच्छा अवसर न मिलेगा।

आस्ट्रिया की अन्तिम सूचना।

जर्मनी का पक्ष समर्थन।

सर एडवर्ड ग्रे और सर मारिस डी० बन्सन के पत्र।

२३ जुलाई को आस्ट्रियन सरकार ने अपने राजदूत के द्वारा सर्वियन सरकार के पास यह पत्र भेजाः—

३१ मार्च १६०६ को सर्वियन सरकार की आज्ञा से वीयना स्थित सर्वियन राजदूत ने आस्ट्रियन सरकार को यह पत्र दिया था "सर्विया बड़े राष्ट्रों की इच्छानुसार अपने दुराग्रह को छोड़ेगा। वह अब बासनिया, हर्जीगोवाईना के सम्बन्ध में कोई झगड़ा न उठायेगा और आस्ट्रिया के सम्बन्ध में अपनी नीति में वह सुधार करेगा और भविष्य में वह अच्छे पड़ोसी की भाँति रहेगा। विगत वर्षों का इतिहास और विशेष कर २८ जून की घटना इस बात को अच्छी तरह से साबित करती है कि आस्ट्रिया को खडित करने के लिए सर्विया में भीषण आन्दोलन चल रहा है। यह आन्दोलन-जिसने कि सर्वियन सरकार की देख-रेख में जन्म पाया है—इस हद तक पहुंच गया है कि अब वह सर्वियन सीमाओं के दोनों ओर भीषण अत्याचारों और हत्याओं का रूप धारण करता है।

अपने दिये हुए वचन के अनुसार कुछ करना तो दूर रहा सर्वियन सरकार ने इस आन्दोलन को भी बन्द करने का कोई प्रयत्न नहीं किया । आस्ट्रिया के विरुद्ध प्रयत्न करनेवाली समितियों को इसने काम जारी रखने दिया है, अपने समाचार-पत्रों को बिना किसी किस्म की रोक टोक के उसने आस्ट्रिया के विरुद्ध सब कुछ लिखने दिया है, उसने समाचार-पत्रों को हत्याकारियों की प्रशंसा करने दी है और उसने अपने सरकारी अफ़सरों को इस आन्दोलन में भाग लेने दिया है। सारांश में उसने आस्ट्रिया के विरुद्ध सर्वियन जनता को खड़े करने के सब काम जारी रहने दिये हैं । २८ जून की हत्या के बाद भी सर्वियन सरकार की निद्रा नहीं भंग हुई ।

हत्या करनेवालों के बयानों से यह विदित हुआ है कि हत्या का षड्यंत्र बेलग्रेड में रचा गया था। अस्त्र-शस्त्र उन लोगों को सर्वियन अफ़सरों और नरोडोना और आडब्रना समिति के सदस्यों से मिले थे और अन्तिम यह कि बासनिया में हत्याकारियों और उनके अस्त्र-शस्त्र के पहुंचने का बन्दोबस्त सर्विया के सीमा प्रान्त के अधिकारियों ने किया था। मेजिस्ट्रेट की जाँच से इन बातों के मालूम होने पर अब आस्ट्रियन सरकार विगत वर्षों की भांति कान में तेल डाले बैठी नहीं रह सकती, अब उसे यह आवश्यक प्रतीत होता है कि राष्ट्र के विरुद्ध होनेवाले षड्यंत्रों का वह अन्त करे ।

इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए उसे विवश हो यह कहना पड़ता है कि सर्वियन सरकार उसे यह विश्वास दिलावे कि वह आस्ट्रिया के विरुद्ध रचे जानेवाले षड्यंत्रों को बुरा समझती है और यह कि यथाशक्ति हर प्रकार से वह उन प्रयत्नों

को दबाने का यत्न करेगी जिनका उद्देश्य यह है कि आस्ट्रिया से कुछ प्रान्त अलग किये जायँ।

इन सब बातों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए सर्वियन सरकार १३ जुलाई को अपने सरकारी गज़ट के प्रथम पृष्ठ पर यह घोषणा प्रकाशित करे:—

सर्वियन सरकार आस्ट्रिया के विरुद्ध आन्दोलन को जिसका उद्देश्य आस्ट्रियन सरकार से कुछ प्रान्त अलग करना है घृणा की दृष्टि से देखती है और षड्यंत्र वालों के अनुचित कार्यों के खेदजनक नतीजे पर वह हार्दिक दुःख प्रगट करती है।

सर्वियन सरकार को इसका बहुत दुःख है कि सरकारी अफ़सर इस उपर्युक्त आन्दोलन में शरीक थे और इस तरह से उन लोगों ने गवर्नमेंट के सद्भाव और उसके वचन को जिसे कि वह १६०६ में दे चुकी है कलुषित किया।

सर्वियन सरकार, जिसे कि यह पसन्द नहीं है कि आस्ट्रियन सरकार के किसी भी प्रान्त के निवासियों के भविष्य या उनके किसी मामले में हस्तक्षेप किया जाय, अपना कर्तव्य समझती है और अब वह उन लोगों के साथ जो ऐसी चालें चलेंगे सख़्ती से पेश आयेगी।

साथ ही साथ किङ्ग की हस्ताक्षर सहित आज्ञा की भांति यह हुक्म सेना में भी पहुंचा दिया जायगा और सेना के सरकारी बुलेटीन में भी यह प्रकाशित किया जायगा।

सर्वियन सरकार निम्नलिखित बातों के करने का भी ज़िम्मा अपने ऊपर लेती है—

(१) वह उन पत्रों या प्रकाशित ग्रन्थों को ज़प्त करेगी जिनका उद्देश्य आस्ट्रियन सरकार के प्रति घृणा पैदा करना या उसे उसके साम्राज्य को खण्डित करना है।

(२) वह नरोडोना आवडरोना समिति को भङ्ग करेगी और उसके आयोजनो को ज़प्त करेगी जिसमें वह फिर ज़िन्दा न हो सके, साथ ही साथ वह ऐसी ही अन्य समितियों और उनकी शाखाओं को जो सर्विया में है और जिनका उद्देश्य आस्ट्रियन साम्राज्य का विरोध करना है तोड़ देगी। सर्वियन गवर्नमेंट ऐसी कार्यवाही करेगी जिससे ये भङ्ग की हुई समितियां फिर से ज़िन्दा होकर दूसरे नाम से काम न करने लगें।

(३) सर्विया के निवासियों की पाठ्य-पुस्तकों में से ऐसी वस्तुएं निकालना जिनसे पढ़ने वालों में आस्ट्रिया के प्रति बुरे भाव फैलें।

(४) सेना और शासन-विभाग में से ऐसे मनुष्यों को निकाल बाहर करना जो आस्ट्रिया के विरुद्ध आन्दोलन में शरीक रहे हैं और जिनका नाम और काम आस्ट्रियन सरकार बाद में बतला देगी।

(५) सर्विया में आस्ट्रियन गवर्नमेंट के विरुद्ध आन्दोलन करनेवालों को दमन करने में आस्ट्रियन सरकार के प्रतिनिधियों की सहायता स्वीकार करना।

(६) सर्विया-स्थित २८ जून के षड्यत्र में भाग लेनेवालों पर मुकद्दमा चलाना। आस्ट्रियन सरकार के प्रतिनिधि इस जांच में शरीक होंगे।

(७) वोजाटंकोसिच और मिलनसिगनोविच नाम के

सरकारी अफ़सरों को बिना किसी विलंब के गिरफ़ार करना क्योंकि सिराजेवो की जांच से ये अपराधी प्रमाणित हुए हैं।

(८) ऐसी कार्यवाही करना जिससे सर्वियन अफ़सर चोरी से अस्त्रशस्त्र न भेज सकें और उन शेबाख और लोज़निका सीमा प्रान्त के अफ़सरों को बरख़ास्त और सज़ा करना जिन लोगों ने हत्या करनेवालों को सीमा प्रान्त के बाहर आने में सुगमता प्रदान की थी।

(९) आस्ट्रियन सरकार को सर्विया और विदेशों में स्थित सर्वियन अफसरों—जिन लोगों ने सरकारी नौकर होते हुए भी २८ जून के बाद मिलनेवालों से आस्ट्रियन सरकार के प्रति दुश्मनी के भाव प्रगट किये हैं—की उक्तियों के संबन्ध में जवाब देना।

(१०) आस्ट्रियन सरकार को बिना विलंब के यह सूचित करना कि उपर्युक्त बातें कार्यरूप में परिणत की जायँगी।

आस्ट्रियन सरकार आशा करती है कि उत्तर हद से हद २५ जुलाई शनिवार के ६ बजे सन्ध्या तक में आ जायगा।

साथ ही साथ आस्ट्रियन राजदूत को आस्ट्रियन सरकार ने कुछ बातें ज़बानी कहने के लिए लिख दी थीं। उनमें अधिकतर ऐसी ही बातें थीं जो यह साबित करती थीं कि सर्वियन सरकार ने १९०९ में दिए हुए अपने वचन का प्रतिपालन नहीं किया है, सर्वियन प्रान्त में आस्ट्रिया के विरुद्ध बराबर आन्दोलन होता रहा है, समाचार पत्र बराबर ऐसी बातें प्रकाशित करते रहे हैं जिन्हें पढ़कर पढ़नेवालों में आस्ट्रिया के प्रति घृणा पैदा हो इत्यादि।

अन्तिम सूचना की एक २ प्रति समस्त राष्ट्रों के राजदूतों को दी गई थी। पत्र में पुनश्च करके यह भी लिखा हुआ था कि सिराजेवो में प्रिन्सिप और उसके साथी षड्यंत्रकारियों की जांच से अब तक ये बातें प्रगट हुई हैं :—

(१) षड्यंत्र जिसका उद्देश्य सिराजेवो जाने पर युवराज की हत्या करना था बलग्रेड में रचा गया था। रचनेवालों के नाम ये हैं :—ग्रवरीलो प्रिन्सिप, नेडलज़िक केब्रिवोनिक, मिलन सिगनोविक, ट्रिफको ग्रबेज़, इनके सहायक थे कमांडर वोजटनकोसिक।

(२) ६ बम और चार पिस्तौल जिनसे हत्या की गई प्रिन्सिप, ग्रबेज़, और केब्रिवोनिक को मिलन सिगनोविक और कमांडर वोजटनकोसिक से बलग्रेड में मिले थे।

(३) बम क्रजूजिवेक-स्थित सर्वियन सेना के शस्त्रागार से आये थे।

(४) कार्य में सफलता प्राप्त हो इसलिए सिगनोविक ने प्रिन्सिप, केब्रिवोनिक और ग्रबेज़ को बम चलाने और पिस्तौल चलाने की शिक्षा टोपिशिडर के जंगल में दी थी।

(५) बासनिया हर्जिगोवाइना में अस्त्र-शस्त्र सहित हत्या करनेवालों को पहुंचाने का बन्दोबस्त शिगनोविक ने किया था। इस तरह से चबेक और लोजनिका सीमा प्रान्त के अफसरों ने हत्या करनेवालों को बासनिया पहुंचाया। इस काम में लोजनिका के चुंगी के अफसर ग्रिबिक तथा और भी अनेक मनुष्यों ने सहायता दी थी।

प्रतिलिपि को पाकर सर एडवर्ड ग्रे ने एक पत्र सर्विया स्थित सर मारिस डी बन्सन को लिखा था:—काउन्ट मन्सडार्फ-

से आस्ट्रियन नोट मुझे मिला। मैंने उनसे कहा था प्रिन्स की हत्या और सर्वियन सरकार की करतूतों को पढ़कर स्वभावतः आस्ट्रिया के प्रति सहानुभूति प्रगट होती है किन्तु इसके पहिले मैंने आज पर्यन्त यह नहीं देखा कि एक स्वतंत्र राष्ट्र ने दूसरे स्वतंत्र राष्ट्र को ऐसा पत्र लिखा हो।" ५वीं शर्त का मानना सर्विया की स्वतंत्रता के उपयुक्त न होगा। मैंने अन्त में यह कहा कि अन्य राष्ट्रों की देखूँ क्या राय होती है। काउन्ट मन्सडार्फ़ ने कहा कि यदि प्रिन्स की हत्या के बाद सर्विया तनिक भी मित्रता का व्यवहार करता तो बात यहां तक न बढ़ती। हत्या हुए कई सप्ताह हो चुके किन्तु सर्विया ने सहानुभूति प्रगट करने या सहायता देने के कोई चिन्ह नहीं दिखाये। सर्विया की दीर्घसूत्रता को कम करने के लिए अवधि बदना और उत्तर के लिए समय निर्धारित करन बहुत आवश्यक था। मैंने कहा कि जब सर्विया उत्तर देने में बिलंब करता तब बाद में "अवधि" दो आ सकती थी"।

इधर सर एडवर्ड ग्रे यह लिख रहे थे उधर कहा जाता है कि फ्रांसस्थित जर्मन राजदूत ने फ्रेंच पर-राष्ट्र-सचिव से बातें करते हुए कहा कि युद्ध आस्ट्रिया और सर्विया के मध्य ही होना चाहिये, रणक्षेत्र में विस्तार होना अच्छा न होगा किन्तु यदि फ्रांस कोई ऐसी कार्यवाही करेगा जिससे युद्ध क्षेत्र के बढ़ने की आशंका हो तो जर्मनी को भय है कि मित्रत्रय (जर्मनी, आस्ट्रिया और इटली) और सम्मिलित मित्र-दल (इङ्गलैंड, फ्रांस और रूस) में भीषण झगड़ा उठ खड़ा होगा। इधर रूस में आस्ट्रिया की कार्यवाही को सुनकर राजनीतिज्ञ स्तंभित हो गये और गंभीर पुरुषों में इस बात

इस बात की चर्चा आरंम्भ हो गई कि संभव है रूस में सैन्य-संग्रह आरंभ हो जाय।

२४ जुलाई को बलग्रेड में सर्वियन सचिव ११ बजे सबेरे पहुंचे। समस्त सचिवों की सभा हुई किन्तु कोई बात तय न होने पाई सब मामला रात्रि के लिए रख छोड़ा गया।

२४ जुलाई।

इस समय पर फ्रांस के सभापति मोशिए प्वैनकेर और प्रधान सचिव मोशिए विवियानी रूस की सैर कर रहे थे और ज़ार के मेहमान थे। आस्ट्रिया की अन्तिम सूचना की खबर सुन वे वहां से तुरन्त ही रवाना हुए।

२४ जुलाई को मि० सज़नाफ रूसी पर-राष्ट्र-सचिव ने ब्रिटिश राजदूत को बुला कर कहा "आस्ट्रिया की शर्तें क्रोध पैदा करनेवाली और मर्यादा-रहित हैं। जर्मनी की पहिले ही सम्मति प्राप्त करके उसने ऐसा किया है। आगे चलकर उन्होने यह भी कहा कि "फ्रांस रूस की मैत्री का सब तरह से प्रतिपाल करेगा और हमें आशा है कि ब्रिटिश गवर्नमेंट भी रूस और फ्रांस का साथ देने की घोषणा करने से नहीं रुकेगी"। ब्रिटिश राजदूत के यह कहने पर कि सर्विया में इङ्गलेंड का कोई स्वार्थ नहीं है मि० सज़नाफ ने कहा कि इसमें समस्त यूरोप का प्रश्न मिला हुआ है। ब्रिटिश राजदूत ने तब यह कहा कि ब्रिटिश गवर्नमेंट आस्ट्रियन और जर्मन गवर्नमेंटों को इस बात को ज़ोर से समझा देगी कि सर्विया पर आस्ट्रिया के हमला करने से यूरोपीय शान्ति भंग होगी। २४ तारीख को सर एडवर्ड ग्रे को तार देते समय सर जार्ज बुकैनन ने यह भी लिखा था कि

२४ जुलाई।

फ्रेंच सभापति और प्रधान सचिव रूस से लौट कर ५ दिन के पहिले फ्रांस नहीं पहुँच सकते और ऐसा मालूम पड़ता है है कि आस्ट्रिया ने ज्ञान बूझ कर ही ऐसे समय में अन्तिम सूचना भेजी है।

उसी तारीख़ को बलग्रेड-स्थित ब्रिटिश राजदूत का यह तार सर एडवर्ड ग्रे को मिला था :—

आस्ट्रियन सरकार की शर्तों को सर्वियन सरकार सर्वथा अमाननीय समझती है और आशा करती है कि ब्रिटिश गवर्नमेंट कृपा कर आस्ट्रियन गवर्नमेंट को समझा बुझा कर शर्तों को नर्म करायेगी।

यह बिनती सर्विया के प्रधान सचिव ने मुझसे की है। उसी दिन लंदन स्थित जर्मन राजदूत ने अपने गवर्नमेंट की एक चीठी सर एडवर्ड ग्रे को दी। चीठी में सर्वियन आन्दोलन की बुराइयों पर ज़ोर दिया गया था और यह कहा गया था कि आस्ट्रिया की शर्तें न्यायोचित और नर्म हैं। यह भी साफ तौर से सूचित किया गया था कि जर्मन सरकार आस्ट्रिया की कार्यवाही को पसन्द करती है।

उसी तारीख को पेरिस-स्थित ब्रिटिश राजदूत सर फ्रेंसिस बर्टी को पत्र लिखते हुए सर एडवर्ड ग्रे ने लिखा था "मैं फ्रेंच-राजदूत मोशिए कैमबन से मिल चुका हूँ और अब रूसी राजदूत से मिलने जाऊंगा। इनसे मुझे यह कहना है कि जर्मनी, इटली, फ्रांस और इङ्गलैंड मिलकर आस्ट्रिया और रूस पर अपना २ प्रभाव डालें और उन्हें नम्र करने का प्रयत्न करें। मो० कैमबन ने कहा है कि बाद में जब कि आस्ट्रिया अपनी कार्यवाही एक बार शुरू कर देगा कुछ करना व्यर्थ होगा।

२४ जुलाई। उसी तारीख को सर एडवर्ड ने बर्लिन-स्थित जर्मन राजदूत को लिखा थाः—

जर्मन राजदूत ने आस्ट्रिया सर्विया के झगड़े के संबन्ध में जर्मन सरकार की राय को हमसे विदित किया है। मैं समझता हूं जर्मन सरकार ने वैसी ही चीठियाँ अन्य राष्ट्रों के पास भी भेजी हैं। मैंने उत्तर में कहा है कि यदि आस्ट्रिया की अन्तिम सूचना के कारण आस्ट्रिया और रूस में झगड़ा न खड़ा हुआ तो हमें इस झगड़े से कोई सरोकार नहीं है। मुझे सेंटपीटर्सबर्ग (रूस) से अभी कोई पत्र नहीं मिला है किन्तु मुझे भय है कि रूस भीषण दृष्टि से इस मामले पर विचार करेगा। कई दिन हुए बातचीत करते समय जर्मन राजदूत के यह कहने पर कि रूस को नम्र रखने का मैं प्रयत्न करूं मैंने कह दिया था कि मैं प्रयत्न करूंगा किन्तु अब मैंने कह दिया है कि आस्ट्रियन पत्र की कड़ाई, इतने कम समय और शर्तों की ओर ध्यान देते हुए मुझे रूस से

२४ जुलाई। कम से कम कोई आशा नहीं है। सिर्फ एक बात इस समय की जा सकती है और वह यह है कि जर्मनी, इटली, फ्रांस और इङ्गलैंड मिलकर आस्ट्रिया और रूस को यदि उनमें झगड़ा बढ़ने लगे तो समझाने का प्रयत्न करें। आफत तो यह है कि कुछ ही घंटों में आस्ट्रिया, सर्विया पर चढ़ाई कर देगा और रूसी स्लैव यह चिल्लाने लगेंगे कि रूस सर्विया की सहायता के लिए खड़ा हो। यह अच्छा होगा यदि आस्ट्रिया फ़ौजी कार्यवाही आरंभ न करे और इस तरह हम लोगों को अधिक समय मिल जाय किन्तु हम में से कोई इस बात में दस्तनदाज़ी नहीं कर सकता जब तक कि जर्मनी ऐसा प्रस्ताव न करे और इस काम में हम लोगों का

साथ न दे। आप पर-राष्ट्र-सचिव से इन सब बातों को कहिये।

प्रिंस लिकनोविस्की (लंदन-स्थित जर्मन राजदूत) ने मुझसे कहा था कि यदि सर्विया ने समस्त शर्तें स्वीकार न कीं तो अवधि के समाप्त होते ही आस्ट्रिया कार्य आरंभ करेगा। प्राइवेट तौर से बात करते हुए प्रिंस लिकनोविस्की ने यह भी इशारा किया था कि सर्विया एकदम नाहीं कभी भी न करे, कुछ बातों को पूरी तरह से स्वीकार करने का जवाब तुरन्त चला जाना चाहिये जिसमें आस्ट्रिया को फौरन चढ़ाई करने का बहाना न मिल सके।
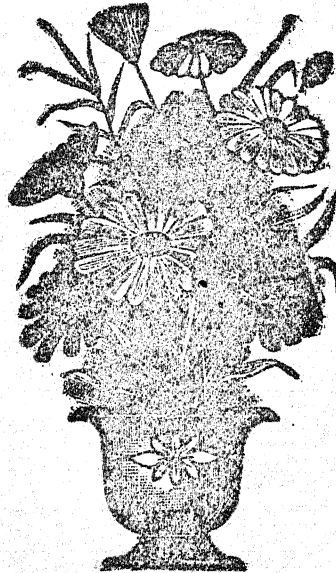
२४ जुलाई।

रूसी हस्तक्षेप—सर्विया का जवाब ।

२४ जुलाई को मि० सज़नाफ ने आस्ट्रिया-स्थित रूसी राजदूत प्रिन्स कुडाकेफ को तार दिया कि वे आस्ट्रियन गवर्नमेंट को सर्विया को अधिक समय देने की उपयोगिता दिखलावें ।

२४ जुलाई ।

दूसरे दिन सर एडवर्ड ग्रे ने सर एफ़ बर्टी और सर जी० एन० बुकेनन को तार दिया कि आस्ट्रियन राजदूत ने उन्हें समझाया है कि आस्ट्रियन सरकार ने अन्तिम सूचना नहीं वरन धमकी मात्र समय की अवधि के साथ दी है ।

२५ जुलाई ।

उसी दिन सर एडवर्ड को सर जी० एन० बुकेनन का एक तार मिला। तार में उन्होंने यह लिखा था कि मि० सज़नाफ से जो बातें मुझसे हुई हैं उनका सार यह है:—यदि सर्विया अन्य राष्ट्रों से अपील करे तो रूस समस्त फैसला फ्रांस, इङ्गलैंड, जर्मनी और इटली पर छोड़ देगा। रूस सैन्य संग्रह कर युद्ध छिड़वाने में शीघ्रता न करेगा, रूस लाचार होने ही पर कार्यवाही शुरू करेगा। वास्तव में आस्ट्रिया रूस के विरुद्ध कार्यवाही कर रहा है। वह बालकन प्रायद्वीप की वर्तमान स्थिति में उलट पलट कर अपना अधिकार बढ़ाना चाहता है। यदि इङ्गलैंड फ्रांस और रूस के साथ खड़ा होगा तो युद्ध न छिड़ेगा

२५ जुलाई ।

किन्तु यदि इंगलैंड ने इस समय रूस का साथ नहीं दिया तो खून की नदियां बहेंगी और अन्त में इङ्गलैंड को भी युद्ध में सम्मिलित होना पड़ेगा। मेरे यह कहने पर "कि रूस के एक-दम मित्र बन बैठने से यह अच्छा होगा कि इङ्गलैंड पहिले मित्र की भांति जर्मनी और आस्ट्रिया को समझाने बुझाने की कोशिश करे क्योंकि इसके मानी यह होंगे कि यदि उसकी सलाह न मानी गई तो वह विवश होकर रूस और फ्रांस का साथ देगा"

२५ जुलाई।

मि० सज़नाफ ने कहा कि दुर्भाग्य से जर्मनी को यह विश्वास है कि इङ्गलैंड उदासीन रहेगा।

सर एडवर्ड ग्रे के २४ तारीख के तार के उत्तर में सर होरेसरमकोल्ड ने तार द्वारा सूचित किया कि जर्मन पर-राष्ट्र-सचिव से मैं मिला था और उन्होंने विश्वास दिलाया है कि जर्मनी किसी भी प्रकार से युद्ध का अभिलाषी नहीं और वे हर तरह से यह प्रयत्न करेंगे कि लड़ाई न छिड़े।

इसी तारीख को सर एडवर्ड ग्रे को रोमस्थित ब्रिटिश राजदूत सर रेनल्ड ने यह सूचित किया था :—

२५ जुलाई।

आज प्रातःकाल मैं प्रधान सचिव से मिला था। उनकी बातों से मालूम हुआ कि उनको इस प्रस्ताव की—कि इङ्गलैंड, फ्रांस, जर्मनी और इटली मिलकर आस्ट्रिया और रूस को समझाने का प्रयत्न करें—खबर है। उनकी राय यह मालूम होती है कि जब तक बिना किसी शर्त के सर्विया आस्ट्रिया की बातों को न मानेगा तब तक आस्ट्रिया शान्त न होगा। यह विश्वस्तसूत्र से मालूम हुआ है कि आस्ट्रिया सालोनिका (Salonica) रेलवे पर कब्ज़ा करना चाहता है।

उसी दिन दोपहर के समय सर मारिस डी बन्सन का यह तार सर एडवर्ड ग्रे को मिलाः—

समाचार पत्रों के देखने से विदित होता है कि सर्विया के आत्मसमर्पण "की न तो आशा की जाती है और न कोई उसे वास्तव में चाहता ही है। यह सरकारी तौर से प्रकाशित किया गया है कि आस्ट्रियन-सचिव से कह दिया गया है कि यदि सर्विया बिना किसी प्रकार की शर्तों के सब बातों को न मान ले तो वह तुरन्त अपने अनुयायियों सहित ६ बजे शाम को दूतावास को छोड़ दे। पर-राष्ट्र-सचिव सर्विया का उत्तर आने पर स्वयम् ही उसे सुनाने के लिए सम्राट् के पास इश्ल (Ischl) जायँगे।"

तीसरे पहर के समय बलग्रेड से यह खबर आई। "सचिवों की सभा आस्ट्रिया के लिए उत्तर तैयार कर रही है। मुझे सहकारी पर-राष्ट्र-सचिव से पता चला है कि अधिकतर आस्ट्रिया की शर्तें मानी जायँगी और उत्तर ऐसा होगा जिससे मेल होने की संभावना हो।

भावी उत्तर का सारांश यह हैः—सर्वियन सरकार गज़ट में घोषणा प्रकाशित करने को राज़ी है। कुछ शर्तों के साथ दसों बात स्वीकार की जाती हैं। सर्वियन सरकार सम्मिलित और मिश्रित जांच के लिए तैयार है यदि यह बतला दिया जाय कि यह अन्तर्राराष्ट्रीय नियमों के अनुकूल है। वह उन अफ़सरों को जो दोषी साबित हो जायें निकाल देने और उन पर मुकदमा चलाने को तैयार है। उसने उस अफ़सर को जिसका इशारा आस्ट्रिया ने किया था गिरफ़्तार कर लिया है। वह नरोडना अडब्रेना समिति को तोड़ देने के लिए तैयार है।

सर्वियन सरकार ने यह भी लिखा था कि यदि आस्ट्रिया हर तरह से युद्ध करने ही पर न तुला बैठा हो तो उसे इस उत्तर से सन्तुष्ट होना चाहिये।"

संध्या समय फिर एक तार बलग्रेड से मिला उसमें लिखा था कि आस्ट्रियन सचिव ६.३, पर रवाना हो गया। गवर्नमेंट निश के लिए रवाना हो गई है। मैं भी अन्य साथियों के साथ जा रहा हूं।

उसी दिन सर एडवर्ड ने सर जी० बुकेनन को लिखा था:—आपने जो कुछ रूसी सचिव से कहा बिलकुल ठीक है, इससे अधिक ब्रिटिश गवर्नमेंट की ओर से मैं वादा नहीं कर सकता। मैं यह समझता हूं कि अङ्गरेज हम लोगों का सर्विया का झगड़ा लेकर लड़ना न पसन्द करेंगे और उन्हें यह पसन्द भी न करना चाहिये। यदि युद्ध छिड़ा ही तो अन्य मामलों के उभरने से हम लोगों को युद्ध में सम्मिलित होना पड़ेगा और इसीलिए मैं चाहता हूं युद्ध जहां तक न छिड़े अच्छा। आस्ट्रिया के झगड़े का यह फल शर्तिया होगा कि एक दूसरे के विरुद्ध रूस और आस्ट्रिया शीघ्र ही सैन्य संग्रह करें। ऐसा होने पर हमारी समझ में शान्ति रखने का एक यही उपाय है कि अन्य चारों राष्ट्र आस्ट्रिया और रूस को समझावें कि वे अपनी २ सीमा के बाहर न निकलें और अन्य चारों राष्ट्रों का समय दें कि वे रूस आस्ट्रिया को समझा बुझा कर मामला तय कर दें। यदि जर्मनी भी इस बात को स्वीकार करे तो हमारी राय यह है कि हम और फ्रांस कार्यवाही करना शुरू करें। इटली निस्सन्देह खुशी से सब का साथ देगा। यदि दोनों दल के शत्रुमित्र अपनी अपनी ओर सम्मिलित होंगे तो न आस्ट्रिया और न रूस ही किसी प्रकार के राजनैतिक

हस्तक्षेप को पसन्द करेगा । इसलिए जर्मनी का हम लोगों के साथ रहना बहुत आवश्यक है।

इस समय तक आस्ट्रियन सरकार ने कोई कार्यवाही नहीं शुरू की थी और युद्ध छेड़ने से रुकी हुई थी। यह पता हमें सर होरेसरमबोल्ड के तार से लगता है जो कि २५ ही तारीख को सर एडवर्ड ने भेजा था। उसमें लिखा था कि आस्ट्रियन राजदूत ने हमें सरकारी तौर से सूचना दी है कि समय की अवधि पूरी होने पर आस्ट्रिया सर्विया से केवल राजनैतिक सम्बन्ध तोड़कर फ़ौजी तैयारी शुरू करेगा किन्तु वह युद्ध नहीं छेड़ेगा। जर्मन राजदूत से बात करते हुए मैंने कहा कि सीमा पार करने के पहिले यह सैन्य-संग्रह की तैयारी होगी जिसे कि मैं चाहता था कि देर से शुरू हो। साफ साफ इसका अर्थ यह होगा कि आस्ट्रिया और रूस में सैन्य संग्रह आरंभ होगा। जर्मन राजदूत ने जर्मन पर-राष्ट्र-विभाग का एक तार पढ़कर हमें सुनाया। तार में लिखा था कि जर्मन सरकार को आस्ट्रियन सूचना का पता नहीं था और अन्य राष्ट्रों की भांति उन कड़ी शर्तों में उसका तनिक भी हाथ नहीं है, किन्तु जब आस्ट्रिया ने अन्तिम सूचना दे दी है तब वह पीछे हट भी नहीं सकती। प्रिन्स लिकनोविस्की ने कहा कि यदि सब राष्ट्र मिलकर हस्तक्षेप करें तो सम्भवतः आस्ट्रिया राज़ी हो सकता है। उन्होंने कहा कि व्यक्तिगत मेरी सम्मति में राष्ट्रों का हस्तक्षेप करना अच्छा होगा।

मैं उनकी राय से सहमत हुआ। मैंने यह भी कहा कि आस्ट्रिया और सर्विया के झगड़े में पड़ने का मुझे अधिकार नहीं किन्तु आस्ट्रिया और रूस में झगड़ा खड़ा होने से यूरोप

की शान्ति भङ्ग होगी और ऐसी अवस्था में हम सब लोगों को हस्तक्षेप करना चाहिये।

मैंने राजदूत से यह भी कहा कि रूस और आस्ट्रिया के सैन्य-संग्रह करने पर शान्ति के लिए उद्योग करने में जर्मनी का साथ देना बहुत ज़रूरी होगा। अकेले हम लोग कुछ न कर सकेंगे। फ्रेंच अधिपतिगण सफर में हैं, इनसे सलाह लेने का मुझे वक्त नहीं मिला और इस कारण निश्चित रूप से उनकी सम्मति के सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कह सकता किन्तु यदि जर्मन गवर्नमेंट हमारे प्रस्ताव को पसन्द करे तो हम फ्रेंच सरकार से यह कहने को तैयार हैं कि मेरी राय में इस राय के अनुसार काम करना ठीक होगा।

प्रिन्स कुडाकेफ की प्रार्थना को कि सर्विया को जवाब देने के लिए ४८ घण्टे का समय और दिया जाय आस्ट्रिया ने नामंजूर किया है और यद्यपि सरकारी तौर से कोई सूचना नहीं प्रकाशित हुई है तथापि यह सर्वसाधारण को विदित हो गया है कि युद्ध सर्विया और आस्ट्रिया के बीच ही परिमित न रहेगा।

२७ जुलाई।

सोमवार २७ जुलाई को रूस, आस्ट्रिया, फ्रांस और जर्मनी में चारो ओर युद्ध-ज्वर फैल गया। डेनमार्क भी क्रोध से विह्वल हो गया क्योंकि चारों ओर नार्वे और डच तटों पर जर्मन नौसेना के जहाज़ों को एकत्र होने का हुक्म दिया गया था। इसी समय पर बेलजियम में सैन्य-संग्रह हुआ।

फ्रांस में राजनीतिज्ञों की इस समय विचित्र दशा थी। फ्रेंच राजनीतिज्ञ सदा से अति गम्भीर प्रसिद्ध हैं किन्तु इस

समय उनके चेहरे भी चिन्ताग्रस्त दिखाई देते थे। फ्रेंच सरकार की राय यह थी कि शान्ति के दो उपाय हाथ से जाते रहे। सर्विया ही आष्ट्रिया की शर्तों को सब प्रकार से मान लेता या आस्ट्रिया ही सर्विया के उत्तर से सन्तुष्ट हो जाता किन्तु इन दोनों में से एक भी नहीं हुआ। आस्ट्रिया और सर्विया में युद्ध होना एक प्रकार से अब निश्चित है। दो ही दिनों में मंगल या बुधवार तक में यह तय हो जायगा कि यूरोप में शान्ति विराजेगी या वह समराग्नि में झुलसेगा। जब तक आस्ट्रिया सर्विया पर हमला नहीं करता तभी तक समझाने बुझाने की जगह बाक़ी है। यदि आस्ट्रिया ने धावा बोल दिया तो फिर यह असंभव है कि रूस हस्तक्षेप न करे और चुपचाप बैठा रह जाय। बिलकुल यही राय फ्रांस-स्थित विदेशी राजदूतों और राजनीतिज्ञों की भी थी। फ्रांस की घबराहट का कारण यह था कि वह समझता था कि आस्ट्रिया के धमकी देने में जर्मनी का हाथ है। यह कहा जाने लगा कि बालकन युद्ध के समय यूरोप की शान्ति भंग न होने का सब से बड़ा कारण यह था कि जर्मनी को यह पसन्द न था कि युद्ध का सूत्रपात आस्ट्रिया के दक्षिण स्लैवों के विजय के कारण हो। एक दो दिन पहिले तक दूरदर्शी राजनीतिज्ञों का यही मत था किन्तु अब उस मत में परिवर्तन हो गया है। इसका न सोचना असम्भव है और फ्रेंच सरकार ऐसा सोचने से अपने को रोक नहीं सकती कि वर्तमान स्थिति एक सोचे समझे स्कीम का नतीजा है। प्रिन्स की हत्या को चार सप्ताह गुज़र चुके थे किन्तु आस्ट्रिया ने कार्यवाही ऐसे समय आरम्भ की जब फ्रेंच सभापति और पर-राष्ट्र-सचिव रूस की सैर कर रहे थे और ठीक उसी समय में जब कि अल्स्टर का

झगड़ा तय करने को किङ्ग जार्ज द्वारा संगठित कान्फरेंस कुछ कार्य न कर सकने के कारण भंग हो गई। समस्त अधिकारियों के विचार ऐसे ही थे। वे कहते थे कि बिना जर्मनी की पूर्ण सम्मति प्राप्त किए आस्ट्रिया ने कभी यह सब कार्यवाही न की होगी। और यदि ऐसा है तो यह सब जर्मनी की चाल है और बस इसके सिवाय—कि या तो समस्त यूरोप में रणाग्नि प्रज्वलित हो या सम्मिलित मित्र-दल (इङ्गलैंड, फ्रांस और रूस) का मान हत हो—और कोई चारा नहीं है। कैसर समझते हैं कि बस काम करने का मौक़ा आ गया है। रूस अनवरत प्रयत्न कर रहा है किन्तु वह तैयार नहीं है। फ्रांस बिलकुल तैयार नहीं है किन्तु वह भी भीषण प्रयत्न कर रहा है। मित्र बालकन राष्ट्र युद्ध से थके पड़े हैं और दो ही चार वर्षों के बाद उनका सम्मिलित दल बड़ा शक्ति-सम्पन्न हो जायगा और वह आस्ट्रिया के लिए हानिकर होगा। २७ जुलाई को मि० चर्चिल भी ओवरस्टैंड से जहां कि वे सप्ताह की छुट्टी मनाने गये थे लौट आये।

रात्रि के समय एडमिरैलटी ने यह विज्ञप्ति प्रकाशित की:— यदि दोनों दल के शत्रु मित्र अपने अपने दल में सम्मिलित होंगे तो आस्ट्रिया और रूस किसी प्रकार के राजनैतिक हस्तक्षेप को पसन्द न करेंगे। इसलिए जर्मनी का साथ देना बहुत आवश्यक है।

इस समय तक आस्ट्रियन सरकार ने कोई कार्यवाही नहीं शुरू की थी और युद्ध छेड़ने से रुकी हुई थी। यह पता हमें सर होरेसरमबोल्ड के तार से लगता है जो कि २५ ही तारीख को सर एडवर्ड ने भेजा था। इसमें लिखा था कि आस्ट्रियन राजदूत ने हमें सरकारी तौर से सूचना दी है कि इस

समय पोर्टलैंड स्थित प्रथम नौ-सेना को आज्ञा दी गई है कि वह देख भाल करने के लिए अपने स्थान से कहीं न जाय।

द्वितीय नौ-सेना के समस्त जहाज़ इङ्गलैंड के पोर्ट में स्थित रहें।

कोपनहेगन में उसी समय यह प्रकाशित हुआ कि वर्तमान संकट के उपस्थित होने के कारण क़ैसर नार्वे में न ठहरेंगे और आशा है कि वे कल इधर से होकर जर्मनी जायँगे। इसी समय पर यूरोप के प्रधान राजनीतिज्ञ डिलन साहब ने वीयना से एक तार लंदन के डेली टेलीग्राफ़ पत्र में प्रकाशित होने के लिए भेजा था। यूरोप के दक्षिण भाग के राष्ट्रों की राजनीति के सम्बन्ध में ये एक विशेषज्ञ माने जाते हैं और इनकी सम्मति आदर की दृष्टि से देखी जाती है। २६ जुलाई को तार देते हुए इन्होंने लिखा था कि सम्मिलित मित्र-दल के राजनीतिज्ञ भारी भ्रम में हैं। वे यह ग़लत समझ रहे हैं कि लड़ाई का वास्तविक कारण कुमार और कुमारी की हत्या है। इसी बिना पर वे कहते हैं कि आस्ट्रिया को अधिक समय देना चाहिये जिसमें वे सर्विया पर ज़ोर डाल सकें कि वह आस्ट्रिया की शर्तों पर विचार करे और उदारता-पूर्वक ध्यान दें। वास्तव में बात बिलकुल दूसरी है। आस्ट्रियन राजनीतिज्ञ इन शर्तों को अभीष्ट साधन का आवश्यक अङ्ग समझते हैं, वे यही चाहते हैं कि सर्विया आस्ट्रिया के प्रति मित्रवत् आचरण करे और शत्रुता का भाव त्याग दे। आस्ट्रियन सम्राट् के शक्तिशाली सलाहकारों का मन मैं कह रहा हूं कि यदि सर्विया अपने वचन से तथा कर्मों द्वारा यह प्रगट कर दे कि वह मित्रवत् आचरण करेगा तो आस्ट्रिया अपनी शर्तों को वापस ले लेगा। वास्तव में आस्ट्रिया की इच्छा यही है,

वह चाहता है कि शत्रुवत् आचरण करना सर्विया त्याग दे। यही गत १८ महीनों से आस्ट्रिया बराबर कह रहा है किन्तु नम्र प्रार्थनाओं को सफल होते न देख अबकी बार उसने कड़ी शर्तों से धमकी दी है जिससे सर्विया वही करने पर विवश हो जो उसने प्रार्थना करने पर नहीं किया। यहां यह बात ज़ोर के साथ कही जाती है कि सर्विया का शर्तों पर राज़ी होना झूठी शान्ति होती, युद्ध केवल स्थगित हो जाता और बाद में ऐसे समय पर छिड़ता जो आस्ट्रिया के लिए हितकर न होता। जिस प्रकार से सर्विया ने सरकारी तौर से बैरन गील को यह सूचना दी कि वह आस्ट्रिया की शर्तों को नामंज़ूर करता है उससे भी यहां लोग बहुत असन्तुष्ट हैं। कल दोपहर तीन बजे तक सर्वियन सरकारी बड़े २ अफ़सरों ने बलग्रेड स्थित वीयना और हंगरी के समाचार-पत्रों के विशेष संवाददाताओं से कहा है कि सर्विया को विवश हो आस्ट्रिया की शर्तों को मानना पड़ा है और इसलिए अब युद्ध न होगा।

६ बजे संध्या को ठीक समय पर प्रधान सचिव मि० पशिच ने बैरन गील को सर्विया का उत्तर दिया। पढ़कर उन्होंने कहा कि यह काफ़ी नहीं है और इस कारण सर्विया से राजनैतिक संबन्ध छोड़ना आवश्यक है। आध घंटे बाद वे दूतावास को त्याग कर रवाना हो गये। इसके पहिले तीन बजे ही, जब कि सर्विया के प्रेसब्यूरो ने विदेशी अखबारवालों से कहा था कि स्थिति शान्तिमय है, सर्वियन सेना को एकत्रित होने के लिए आज्ञा दे दी गई थी। सरकारी पत्र "समोप्रवा" ने भी कल के अपने लेख में प्रकाशित किया था कि आस्ट्रिया की शर्तें मंजूर की जायँगी।

यहां के पत्र कह रहे हैं कि सर्विया इस गंभीर समय में भी धोखा देने से अपने को न रोक सका और बराबर शान्ति की बातें कर रहा था जब कि वास्तव में युद्ध करने का वह पूरा इरादा कर चुका था। बलग्रेड की इस ख़बर पर—कि भाव में परिवर्तन पेट्रोग्राड से २००० शब्दों के तार के आने पर हुआ है—वहां किसी को विश्वास नहीं है।

आस्ट्रिया का इसलिए कथन यह है कि यदि सर्विया मित्र भाव से रहना चाहता तो ४८ घंटे क्या वह एक घंटे में जवाब दे सकता था। यदि वह ऐसा चाहता और अपने पड़ोसी को इस बात का विश्वास दिला देता तो ऐसी शर्तों से कोई बाधा न होती। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है हत्या केवल ऊपरी बात है, वास्तव में झगड़ा बहुत पुराना है और इस संबन्ध में कितनी ही बार सर्वियन सरकार को लिखा भी जा चुका है, इसलिए सम्मिलित मित्रदल के अलग २ या सम्मिलित प्रस्ताव को कि समय अधिक दिया जाय आस्ट्रिया स्वीकार न करेगा।

आस्ट्रिया ने खूब सोच समझ कर काम किया है, उसने राजनैतिक और सैनिक सभी बातों को सोच कर तब हीं कार्यवाही शुरू की थी। बड़ी सावधानी से ठीक समय चुना गया था।

यह वह समय था कि जब राजकुमार और कुमारी की हत्या के कारण सभी जाति के यूरोपनिवासियों की स्वभावतः आस्ट्रियन जाति से सहानुभूति थी। लोग यह भी जानते थे कि सर्वियन अफ़सर ही इस हत्या के कारण थे। यह समय वह था जब कि मि० हमबर्ट फ्रेंच सनेट में कह चुके थे कि गोला बारूद और आवश्यक वस्तुओं की कमी के कारण फ्रेंच

जाति इस समय लड़ाई लड़ने में बिलकुल असमर्थ है। ऐसे समय में फ्रेंच जाति अपनी ही दशा से अवगत होने के कारण कभी भी कोई ऐसी राजनैतिक चाल चलने पर उद्यत न होती जिससे तनिक भी शान्ति भङ्ग की आशङ्का हो सकती। यह वह समय था जब कि आयर्लैंड के होमरूलवालों और अल्स्टरवालों में झगड़ा हद्द पर पहुँच गया था। गोला-बारूद एकत्र होने लगा था और यह भय था कि शीघ्र ही ग्रेटब्रिटेन की प्रजा में आपस में मारकाट जारी हो जायगी। यह वह समय था जब कि फ्रेंच सभापति और प्रधान पर-राष्ट्र-सचिव रूस की मेहमानी खाने गये थे और अन्त में लेकिन अन्तिम नहीं यह वह समय था जब कि रूस में अराजकदल वाले हड़-तालियों ने गड़बड़ मचा रक्खी थी और यह आशा की जाती जाती थी कि यदि इस समय मध्य यूरोपीय राष्ट्रों से रूस युद्ध में सम्मिलित हुआ तो ये अराजक राज्य को उलट पलट करने के लिए जान दे देंगे।

एक बात यहां पर और भी ध्यान में रख लेना चाहिये। बलग्रेड स्थित रूसी राजदूत भी इस समय रूस में था और इस प्रकार से सर्वियन सरकार को बिना रूस की सलाह और सहायता के ही उत्तर अपनी अकेली ज़िम्मेवारी पर देना था।

इन सब बातों को खूब ध्यान में रख कर ही आस्ट्रिया ने अन्तिम सूचना दी थी और आस्ट्रियन सरकार उत्तर में केवल "हां" या "ना" चाहती थी, उसे शर्तों के शब्द जाल की परवाह न थी, वह शर्तों को चाहती थी, वह केवल इतना ही चाहती थी कि सर्विया स्वच्छ हृदय से कह दे कि वह सच्चे पोड़सी की भांति भविष्य में आचरण करेगा।

सर्वियन राजनीतिज्ञ इस मामले को किस दृष्टि से देखते थे उसे भी यहां पर पाठकों को जान लेना चाहिये। उनका कहना था कि आस्ट्रिया की न्याययुक्त शर्तों को मानने में उन्हें कोई उज़्र नहीं। यदि सिराजेवो की जांच से यह मालूम हो कि कुछ व्यक्ति आस्ट्रिया के विरुद्ध सर्विया में षड्यंत्र की रचना करते हैं तो सर्वियन सरकार उनके संबन्ध में उचित कार्यवाही करेगी, किन्तु यदि आस्ट्रिया इस हत्या को राजनैतिक बुरका पहिना कर यह चाहे कि सर्विया अपने राजनैतिक सिद्धान्तों और उद्देश्यों को छोड़ दे और अपनी परम्परागत नीति में परिवर्तन करे तो कोई भी स्वतंत्र राष्ट्र ऐसा नहीं कर सकता कि वह दूसरों के कहे मुताबिक अपनी नीति निर्धारित करे।

आस्ट्रिया को तथा अन्य लोगों को भी यह विश्वास था कि रूस सर्विया का साथ इस समय न देगा। इसका पता हम लोगों को वीयना-स्थित ब्रिटिश और जर्मन राजदूत की बातों से चलता है। सर मारिस डीबन्सन ने २६ जुलाई को सर एडवर्ड ग्रे को तार द्वारा यह सूचित किया था :—

जर्मन राजदूत को यह पूरा विश्वास है कि रूस सर्विया के सज़ा पाने में हस्तक्षेप न करेगा क्योंकि आस्ट्रियन सरकार ने उसे विश्वास दिला दिया है कि वह सर्वियन प्रान्तों पर कभी अधिकार न जमावेगी। हमारे यह कहने पर कि रूसी जनता की सम्मति से विवश होकर संभव है रूस को जातिवालों का पक्ष लेकर खड़ा होना पड़े जर्मन राजदूत ने कहा था यह सब रूसी पर-राष्ट्र-सचिव पर निर्भर है वह चाहे तो दो चार समाचार-पत्रों की बातों को अनसुनी कर सकता

है। उसने यह भी कहा था कि रूसी पर-राष्ट्र सचिव ऐसी भूल न करेगा कि वह ऐसी कार्यवाही करे जिससे झगड़ा और बढ़े और स्वीडन, पोलैंड, रोमानिया और फारस के सीमा को निश्चित करने का झगड़ा उठ खड़ा हो। फ्रान्स की भी इस समय ऐसी अवस्था नहीं है कि वह लड़ाई मोल ले। आगे चल कर उसने कहा था कि सर्विया को सज़ा मिलनी चाहिये और इस झगड़े में अन्य राष्ट्रों को कभी नहीं पड़ना चाहिये। आपने जो लंदन-स्थित जर्मन राजदूत को पत्र लिख कर आशा प्रगट की थी कि सर्विया का उत्तर सन्तोषजनक समझा जायगा उसके संबन्ध में उसने कहा कि सर्विया इस बात को स्वयम् समझता था कि उसका उत्तर सन्तोषजनक नहीं हो सकता और इसीलिए उत्तर भेजने के पहिले ही उसने सैन्य-संग्रह की आज्ञा जारी कर दी थी और सरकार भी बलग्रेड से दूसरे स्थान के लिए जाने का बन्दोबस्त कर चुकी थी।

कैसर लौटे।

२६ जुलाई को कैसर जर्मनी पहुंच गये। कहा जाता है कि उसी समय से जर्मन गवर्नमेंट ने हस्तक्षेप करने से हाथ पीछे किया। बर्लिन-स्थित ब्रिटिश राजदूत ने उसी दिन सर एडवर्ड ग्रे को सूचित किया था "जर्मन सहकारी पर-राष्ट्र-सचिव ने टेलीफोन द्वारा मुझसे कहा है कि जर्मन गवर्नमेंट ने आस्ट्रियन सरकार से सर एडवर्ड की इच्छानुसार कह दिया है कि वह सर्विया के उत्तर को (यदि वह वैसाही है जैसा कि सर एडवर्ड ग्रे को पता लगा है) उदार दृष्टि से देखे। सहकारी सचिव का कथन है कि इतना कहना ही इस बात

का सुबूत होना चाहिये कि जर्मन सरकार सर एडवर्ड के साथ है। इससे कुछ अधिक करने में जर्मन सरकार असमर्थ है।

जर्मनी का यह जवाब था किन्तु इटली की दशा बहुत आशाजनक थी। वहां से राजदूत ने सर एडवर्ड को लिखा था "इटली के परराष्ट्र सचिव आपके प्रस्ताव को कि कान्फरेन्स द्वारा मामला तय हो जाय बहुत पसन्द करते हैं। आज वे इटैलियन राजदूत को ऐसा ही समझा भी देंगे। आस्ट्रियन सरकार ने आज इटैलियन सरकार को सूचित किया है कि बलग्रेड से राजदूत बुला लिया गया है किन्तु इसके यह मानी नहीं हैं कि युद्ध की घोषणा कर दी गई है।

ब्रिटिश ह्वाइट पेपर में इस तार के बाद सर एडवर्ड का एक तार प्रकाशित किया गया है। उसमें सर एडवर्ड ने इटैली, फ्रांस और जर्मनी स्थित राजदूतों को लिखा है कि वे उन गवर्नमेंटों के परराष्ट्र सचिवों से यह प्रार्थना करें कि वे अपने २ राजदूतों को यह लिखें कि वे इटली, फ्रांस, जर्मनी के राजदूतों और सर एडवर्ड ग्रे के साथ बैठकर कोई ऐसी सूरत निकालें जिससे झगड़ा न बढ़ सके। यदि परराष्ट्र सचिव राज़ी हों तो उनसे यह भी कहना कि वे सर्विया, आस्ट्रिया और रूस के प्रधानों से यह भी प्रार्थना करें कि जब तक कान्फरेंस कुछ निश्चय न करले वे फौजी कार्यवाही आरम्भ न कर दें।

तैयार थी। वह अब भी किसी भी सर्वियन को, बिला उसके ओहदे के लिहाज़ के, जिसके सम्बन्ध में कुछ भी सुबूत मुकदमा चलाये जाने के लिए हो समर्पण कर सकती है और सरकारी गज़ट में यह भी प्रकाशित कर देने को तैयार है कि गवर्नमेंट आस्ट्रिया के विरुद्ध कार्यवाहियों को और आस्ट्रियन साम्राज्यान्तर्गत किसी भी प्रान्त को छीनने आदि के प्रयत्न को घृणा की दृष्टि से देखती है।

आगे चलकर यह लिखा गया था कि स्कुप्सटिना की पहिली ही बैठक में एक प्रेस ला बना दिया जायगा और इस के द्वारा जो आस्ट्रियन सरकार के प्रति घृणा फैलावेंगे तथा जो आस्ट्रियन साम्राज्यान्तर्गत किन्हीं भी प्रान्तों पर कब्ज़ा करने के लिये लोगों को उत्तेजित करेंगे उनको बड़ी कड़ी सज़ा दी जायगी। कानून की धाराओं में भी ऐसा परिवर्तन किया जायगा कि ऐसे लेख वग़ैरह फ़ौरन ज़ब्त किये जा सकें। अभीतक कानून की धारा में कोई ऐसा नियम नहीं है इससे कुछ नहीं किया जा सकता।

अभी तक सर्वियन सरकार को इसका कोई भी सुबूत नहीं मिला है और न आस्ट्रियन सरकार ने ही ऐसा कोई सुबूत दिया है जिससे कि यह मालूम हो कि "नारोडोना अडब्रेना" या ऐसी ही अन्य संस्थाओं ने कोई दंडयोग्य काम किया है किन्तु तब भी आस्ट्रियन सरकार के कहने से ही वह इस संस्था को तथा उन अन्य संस्थाओं को जिनका उद्देश्य आस्ट्रिया को हानि पहुंचाना है तोड़ देगी।

जैसा कि लिखा जा चुका है सर्वियन सरकार की जांच में आस्ट्रिया के प्रतिनिधियों के सम्मिलित होने तथा दो एक

अन्य बातों को छोड़कर सर्विया ने सभी बातों को मान लिया था और अन्त में यह लिखा था कि यदि यह उत्तर सन्तोष-जनक न समझा जायगा तो यह समझ कर कि युद्ध किसी के लिए भी हितकर नहीं हो सकता यह अच्छा होगा कि मामला हेग की पञ्चायत में रख दिया जाय या उन राष्ट्रों की पञ्चायत में रक्खा जाय जिन्होंने ३१ मार्च १९०९ का डिक्लेरेशन तैयार किया था ।

अन्य राष्ट्रों की सम्मति।

इटली और इङ्गलैंड निवासियों का यह विश्वास था कि यूरोपीय युद्ध को रोकने का कोई न कोई उपाय निकल आवेगा, साथ ही साथ वे यह भी समझते थे कि आस्ट्रियन सरकार सर्विया के उत्तर से असन्तुष्ट नहीं हो सकती। इसी समय में जर्मन पत्रों ने रूस को खरी खोटी सुनाना आरम्भ किया। उन लोगों ने लिखना शुरू किया कि यूरोप की शान्तिभंग करने का उत्तरदायित्व ज़ार पर होगा क्योंकि उन्होंने सैन्य-संग्रह की आज्ञा दे दी है।

२७ जुलाई। आस्ट्रियन सरकार पर सर्विया के उत्तर का प्रभाव कैसा पड़ा वह रायटर के २७ जुलाई के दिये हुए तार से कुछ २ विदित होता है। रायटर ने लिखा था कि अर्द्ध सरकारी तौर से वीयना में यह विज्ञप्ति प्रकाशित हुई है:—सर्विया के उत्तर से विदित होता है कि संसार को वह यह कह कर—कि आस्ट्रिया की अधिकतर बातें उसे स्वीकार हैं—अन्धा बनाना चाहता है। वास्तव में उत्तर बेईमानी और दग़ाबाज़ी के भाव से भरा हुआ है। उसको देखने से यह साफ़ २ दिखाई देता है कि वह आस्ट्रिया के विरुद्ध षड्यंत्र रचनेवालों के प्रति अपनी उदारता को वास्तव में कम नहीं करना चाहता। उसने सभी बातों में

ऐसी २ शर्तें लगा दी हैं कि उनके कारण बातों के मान लेने का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। हम लोगों को यह शर्त कि आस्ट्रिया के प्रतिनिधि सर्विया की जांच में सम्मिलित होने पावें अस्वीकृत की गई है, हम लोगों की यह प्रार्थना भी कि आस्ट्रिया के विरुद्ध आन्दोलन मचानेवाले पत्रों के सम्बन्ध में उचित कार्यवाही की जाय नहीं मंजूर की गई और हम लोगों की इस इच्छा पर–कि आस्ट्रिया के विरुद्ध षड्यंत्र रचने वाली सभा-समितियां दूसरे नाम से जन्म लेकर काम न करने पावें–तनिक भी ध्यान नहीं दिया गया है।

हम लोगों ने शान्ति के लिए जितनी बातें कम से कम बहुत आवश्यक थीं उन्हीं को लिखा था और जब उतनी बातें भी मंजूर नहीं हैं तो फिर सर्विया का उत्तर अवश्य ही असन्तोष-जनक समझा जायगा। सर्वियन गवर्नमेंट इस बात को स्वयम् ही समझती थी कि उत्तर सन्तोष-जनक नहीं है। इसका पता इसी से चलता है कि अन्त में उसने लिखा है कि मामला पंचायत में रख दिया जाय, साथ ही साथ उत्तर देने के तीन घंटे पहिले ही उसने सैन्य-संग्रह का हुक्म जारी किया था।

आस्ट्रिया निवासियों के यह विचार थे, उधर सर्विया में आशा के चिह्न दिखाई देते थे। इसका कारण यह था कि रूस गंभीर और शान्त हो चुप बैठ गया था और यह आशा की जा रही थी कि वह युद्ध को रोकने का प्रयत्न करेगा। सर्विया-निवासी यह भी कहते जाते थे कि आस्ट्रिया को फिर से प्रश्न पर विचार करना चाहिये और सर्विया के स्वतंत्र राष्ट्र की मान-मर्यादा को ध्यान में रख उसे अपनी शर्तों को ऐसा

ढीला करना चाहिये जिसमें युद्ध न छिड़े किन्तु यदि आस्ट्रिया लड़ना चाहता है तो राष्ट्र के मान के लिए हम लोग भी पीछे हटनेवाले नहीं। हमें कोई दोषी नहीं ठहरा सकता। संसार देख रहा है कि हम लोग आस्ट्रिया की शर्तों को हर तरह से मानने को तैयार हैं। समस्त सर्वियानिवासी क्या राजनीतिज्ञ, क्या साम्यवादी और क्या फ़ौजी सभी को सिराजेवो की हत्या का दुःख है। यह भी ध्यान में रखने की बातें हैं कि:—

(१) हत्यारा आस्ट्रियन प्रजा था (२) वह अपने वास-स्थान हर्जिगोवाइना से सताया जाकर भागा था (३) वह युवक था, कोरा सिद्धान्तवादी था और उसके कृत्य और सर्वियन आन्दोलन से किसी प्रकार का सम्बन्ध न था।

इसके कुछ ही समय बाद सर्वियन फौज ने आस्ट्रियन फौज पर हमला कर दिया। सीमाप्रान्त पर छुट्टा लड़ाई हो कर मामला शान्त हो गया। इस समय तक युद्ध घोषणा नहीं हुई थी और न गठ कर लड़ाई होना ही आरंभ हुआ था।

सर एडवर्ड का प्रस्ताव।

इसी सोमवार २७ जुलाई को सर एडवर्ड ग्रे ने कामन्स सभा में आस्ट्रियन सर्वियन झगड़े की चर्चा की। आस्ट्रिया और सर्विया में जो बातें हुई थीं उसे सब लोग समाचार-पत्रों में पढ़ चुके थे इस लिए उन्हें दोहराने की कोई ज़रूरत न थी, किन्तु उन्हें यह बतलाना था कि इङ्गलैंड की ओर से क्या किया जा रहा है। इसके सम्बन्ध में सर एडवर्ड ने कहा कि शुक्रवार के दिन हमें आस्ट्रिया की अन्तिम सूचना

की प्रतिलिपि आस्ट्रियन राजदूत ने दी । दोपहर को मैं अन्य राजदूतों से मिला । मैंने उन लोगों से कहा कि झगडा आस्ट्रिया और सर्विया में हो रहा है और हम लोगों को कोई हक नहीं कि हम लोग उसमें हस्तक्षेप करें । किन्तु यदि आस्ट्रिया और रूस में मनमोटाव बढ़ा तब फिर मामला यूरोपीय शान्ति का हो जायगा और उससे हम सबों का सम्बन्ध है । मुझे यह नहीं ज्ञात था कि रूसी सरकार किस दृष्टि से इस मामले को देख रही है और बिना यह जाने कि मामला कैसा रङ्ग पकड़ेगा मैं कोई बात निश्चित रूप से नहीं कह सकता था ।

मैंने यह सलाह दी थी कि यदि आस्ट्रिया और रूस में झगड़ा बढ़ जाय और यूरोपीय शान्ति के भंग होने की नौबत आवे तो उस समय सब से अच्छी बात यह होगी कि जर्मनी, फ्रांस, इटली और इङ्गलैंड, जिन राष्ट्रों का स्वयमेव आस्ट्रिया और सर्विया के झगड़े से कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं, मिलकर रूस और आस्ट्रिया पर तब तक फौजी कार्यवाही को रोके रहने का ज़ोर डालें जब तक की चारो राष्ट्रों की सम्मिलित कान्फरेंस झगड़े को तय करने के लिए उद्योग करती रहे ।

जिस समय मैंने सुना कि आस्ट्रिया ने सर्विया से राजनैतिक सम्बन्ध त्याग दिया मैंने अपने विचार को कार्य-रूप में परिणत करने के लिए प्रयत्न आरंभ किये । मैंने पेरिस, बर्लिन और रोम (इटली) स्थित ब्रिटिश राजदूतों को तार द्वारा यह लिखा कि वे वहां की गवर्नमेंटों से यह पूछें कि क्या वे अपने लन्दन स्थित राजदूतों को यह आज्ञा देंगे कि

वे सब सर एडवर्ड के साथ लंदन में एक कान्फरेंस कर डालें और तुरन्त ही इस झगड़े को तय करने का कोई ढंग सोच निकालें। साथ ही साथ ब्रिटिश राजदूतों को मैंने यह भी लिख दिया था कि वे रूस, आस्ट्रिया और सर्विया की गवर्नमेंटों से यह प्रार्थना करें कि वे अपने बलग्रेड, वीयना, और सेंट पीटर्सबर्ग (अब इसका नाम पेटोग्राड हो गया है) स्थित प्रतिनिधियों को लिख दें कि वे वहां की गवर्नमेंटों से यह कह दें कि एक कान्फरेंस हो रही है और उनसे प्रार्थना करें कि जब तक कान्फरेंस उद्योग करती रहे वे फौजी कार्यवाही न करें।

अभी तक इसके संबन्ध में हमें पूरे पूरे उत्तर नहीं प्राप्त हुए हैं। यह ऐसा प्रस्ताव है कि चारों राष्ट्रों का सम्मिलित होना इसके लिए बहुत आवश्यक है। ऐसे संकट के समय में एक राष्ट्र यदि शान्ति के लिए प्रयत्न भी करे तो वह अकेला क्या कर सकता है? कार्य के लिए समय इतना कम था कि नियमानुसार बिना यह पता लगाये कि प्रस्ताव कहां तक स्वीकृत होगा मैंने सब गवर्नमेंटों पर अपना विचार प्रगट कर दिया। मामला ऐसा ही था कि अधिक सोच विचार करने में समय बिताना अच्छा न होता। सर्विया के उत्तर को पढ़कर मैं ऐसा समझने से अपने को नहीं रोक सकता कि यदि राष्ट्रों का एक गुट-जिसमें ऐसे राष्ट्र भी सम्मिलित हों जिनमें रूस और आस्ट्रिया का विश्वास हो-मिल कर प्रयत्न करें तो झगड़े को तय करने की सूरत निकल आवेगी।

जिसने तनिक भी इस सम्बन्ध में विचार किया है उसे यह विदित होगा कि जिस समय यह लड़ाई आस्ट्रिया और

सर्विया की ही न रह जायगी, जिस समय इस लड़ाई में एक और बड़ा राष्ट्र (रूस) भी सम्मिलित हो जायगा तो फिर इसका फल समस्त यूरोप के लिए बहुत ही बुरा होगा। कोई नहीं कह सकता कि उस समय कैसे २ झगडे न उठ खड़े होंगे? मि० लासन के यह प्रश्न करने पर कि क्या उसी दिन कैसर ने यह सूचित नहीं किया है कि उन्हें पंचायत कर मामला तय करने की बात पसन्द है जिसके लिए माननीय सदस्य ने प्रस्ताव किया था। सर एडवर्ड ग्रे ने कहा कि मैं यह समझता हूं कि जर्मन सरकार आस्ट्रिया और सर्विया के बीच समझौते के सिद्धान्त को पसन्द करती है किन्तु इसी सिद्धान्त को पंचायत द्वारा कार्यरूप में परिणत करने को वह तैयार है या नहीं इस संबन्ध में अभी तक कोई उत्तर हमें नहीं मिला है।

ध्यान में रखने योग्य बातें।

सर्विया का जवाब प्रकाशित हो चुका था किन्तु आस्ट्रिया ने असन्तुष्ट होते हुए भी युद्ध की घोषणा नहीं की थी। सर एडवर्ड ग्रे का यह प्रस्ताव कि जर्मनी, इटली, फ्रांस और इङ्गलैंड के चारो राष्ट्र परस्पर मिल कर सर्वियन झगड़े के संबन्ध में कोई ऐसा फैसला करें जिससे आस्ट्रिया और रूस दोनों संतुष्ट रहें, अभी प्रस्ताव की ही अवस्था में था। सर्विया के उत्तर को पढ़ कर राजनीतिज्ञों ने उसे पसन्द किया था। यह प्रायः सभी लोग स्वीकार करते थे कि आस्ट्रिया की प्रायः सभी शर्तों को सर्विया ने स्वीकार कर लिया है। किन्तु आगे कुछ लिखापढ़ी करने से सर्विया ने साफ़ इनकार कर दिया था। एक ओर सर्विया के लंबे चौड़े उत्तर को आस्ट्रियन राजदूत बैरनगील ४५ मिन्टों से कम ही में पढ़ कर उत्तर लिख भेजने को तैयार हो चुके थे कुछ लोग इससे यह अर्थ निकालते थे कि आस्ट्रिया स्वयंमेव मामले को बढ़ाने पर उद्यत है दूसरी ओर आस्ट्रिया ने युद्ध नहीं छेड़ा था, यद्यपि आस्ट्रियन सेनाएँ सहजही में डेन्युब (नदी) को पारकर सर्विया पर चढ़ाई कर सकती थीं।

२८ जुलाई

सर एडवर्ड ग्रे के प्रस्ताव को फ्रांस ने स्वीकार कर लिया था, और कार्य करने के ढङ्ग संबन्धी कुछ शर्तों के साथ उसे इटली भी स्वीकार करते मालूम होता था। जर्मनी ने पंचायत का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया था यद्यपि कार्यशैली के संबन्ध में अभी तक उसने कुछ नहीं लिखा था। रूस बिलकुल चुप था और उसके मन की बातों का कुछ पता नहीं चलता था।

इङ्गलैंड, फ्रांस और रूस की सरकारों में लिखापढ़ी हो रही थी। समय की स्थिति के अनुसार वे पिछले दो तीन सप्ताहों में तय हुई बातों पर पुनः विचार कर रहे थे। यह आशा की जाती थी कि यूरोपीय शान्ति के नाम पर वे निश्चित बातों में कुछ फेरफार करेंगे। अभी तक यह पता नहीं चला था कि जर्मनी ने आस्ट्रिया पर अपना ज़ोर डालना शुरू किया था या नहीं, किन्तु साफ़ साफ़ ऐसा करने पर उद्यत वह ज़रूर दिखाई देता था।

मि० चर्चिल के नौसेना-संबन्धी हुक्म और कामन्स सभा में सर एडवर्ड ग्रे ने जो कुछ कहा उसे सुनकर फ्रांस और रूस में बड़ा सन्तोष फैला। उसी दिन यह भी सुनाई दिया कि जर्मन नौ-सेना जो कि इधर उधर अभ्यास करती फिर रही थी जर्मनी में बुला ली गई।

राष्ट्रों का हृदय।

२७ जुलाई को सर एडवर्ड ग्रे को सर मारिस डी बनसन का एक तार मिला जिसका आशय यह था कि रूसी राजदूत का यह विश्वास है कि आस्ट्रिया युद्ध छेड़ना निश्चय कर चुका है और इसलिए अधिक समय देने के लिए ज़ोर डालना व्यर्थ होगा। उसी दिन फ्रेंच सरकार ने सरकारी तौर से यह सूचित किया कि उसे कान्फ़रेंस का प्रस्ताव स्वीकार है। जर्मन पर-राष्ट्र-सचिव ने उसी दिन बर्लिन स्थित ब्रिटिश राजदूत से कहा कि "कान्फरेंस वास्तव में पंचायत होगी और ऐसी अवस्था में बिना आस्ट्रिया और रूस के इच्छा प्रकट किये हुए इसका संगठन करना उचित न होगा, इसलिए शान्ति की अभिलाषी होने पर भी जर्मन सरकार प्रस्ताव को स्वीकार करने में असमर्थ है। इसके सिवाय रूस और आस्ट्रिया में कुछ लिखापढ़ी होने की सम्भावना है। जर्मन सरकार की राय में अन्य राष्ट्रों के कुछ करने के पहिले यही अधिक उचित होगा कि आस्ट्रिया और रूस

आपस में समझौता करलें। बातचीत होना आरंभ होगया है और यह अच्छा होगा कि जब तक ये आपस में तय करते रहें हम लोग कुछ न बोलें।

पर-राष्ट्र-सचिव ने यह भी कहा था कि अभी तक आस्ट्रिया ने पूरी तौर से सैन्य-संग्रह नहीं आरंभ किया है किन्तु यदि रूस ने जर्मनी के विरुद्ध सैन्य-संग्रह किया तो जर्मन सरकार को भी विवश हो वैसा ही करना पड़ेगा।

"जर्मनी के विरुद्ध" सैन्य-संग्रह करने का अर्थ पर-राष्ट्र-सचिव ने इस प्रकार समझाया था। उन्होंने कहा था कि यदि रूस ने दक्षिण में सैन्य संग्रह किया तो जर्मनी कुछ न बोलेगा किन्तु यदि उसने उत्तर में कार्यवाही शुरू की तो फिर जर्मनी को विवश होना पड़ेगा। रूसी सैन्य-संग्रह का क्रम बड़ा पेचदार है, यह कहना कठिन रहता है कि वास्तव में सेना कहां पर एकत्र हो जायगी इस कारण जर्मनी को सचेत रहना होगा कि एकदम से उसे चौंकना न पड़े। पर-राष्ट्र-सचिवने यह भी कहा था कि रूस से आशाजनक खबरें आरही हैं।

उसी दिन सेंट पीटर्सबर्ग (पेट्रोग्राड) स्थित ब्रिटिश राजदूत ने सर एडवर्ड को तार द्वारा यह सूचित किया था:—
"कल पर-राष्ट्र-सचिव और आस्ट्रियन राजदूत में बातें हुई थीं। राजदूत ने यह प्रयत्न किया कि आस्ट्रिया की कार्यवाही के आपत्तिजनक अंशों का वह समुचित उत्तर देदे। सचिव ने कहा कि "यद्यपि आस्ट्रिया की बातों को वे समझते हैं तथापि अन्तिम सूचना इस प्रकार से लिखी गई थी कि उसकी सब बातों को स्वीकार करना असंभव था। बहुत सी शर्तें उचित थीं साथ ही साथ कुछ ऐसी भी थीं जिन्हें मान लेने

पर भी न केवल वे तुरन्त ही कार्य रूप में परिणत नहीं की जा सकती थीं क्योंकि उनके लिए नये कानूनों के ढालने की आवश्यकता थी वरन् उनसे सर्बिया की मान मर्यादा में भी बट्टा लगता था। रूस के लिए सर्बिया को समझाने बुझाने का प्रयत्न करना व्यर्थ होगा क्योंकि आस्ट्रिया को उसमें विश्वास नहीं है। झगड़े के अन्त के लिए यह अच्छा होगा यदि इङ्गलैंड और इटली आस्ट्रिया से मिलकर बातें तय करें"।

सचिव से बाद में मुझसे भी बातचीत हुई। उनके पूछने पर मैंने वही उत्तर दिया जो कि २४ तारीख को मैं आपको लिख चुका हूं। मैंने यह भी कह दिया है कि कदाचित इससे अधिक इङ्गलैंड न कर सके। मैंने उन्हें यह भी समझाया कि उनका यह भ्रम है कि जर्मनी को यह धमकी देने से कि यदि उसने आस्ट्रिया का साथ दिया तो उसे इङ्गलैंड, रूस, फ्रांस का सामना करना पड़ेगा वह दब जायगा और यों शान्ति बिराजेगी। मैंने कहा कि ऐसी धमकी से जर्मनी हठ पकड़ेगा। इङ्गलैंड के लिए यही अच्छा होगा कि वह एक शान्ति के अभिलाषी की भांति पहिले मित्रवत जर्मनी से आस्ट्रिया को समझाने के लिए कहे। यदि इसमें इङ्गलैंड को सफलता न प्राप्त हो तब भी रूस के लिए युद्ध छेड़ना उचित न होगा। ऐसी अवस्था में हमने यह भी प्रार्थना की कि रूस जितने दिन सैन्य-संग्रह न करे अच्छा होगा। सैन्य-संग्रह का हुक्म निकाल देने पर भी यह अच्छा होगा कि सेना सर-हद्द के बाहर न निकलने पावे।"

सचिव ने उत्तर में कहा कि बिना सम्राट की आज्ञा के सैन्य-संग्रह नहीं आरंभ होगा किन्तु यदि इसमें देर की जायगी

तो आस्ट्रिया इससे लाभ उठावेगा और उसे तैयारी करने का पूरा पूरा समय मिल जायगा। रूसी सचिव ने यह भी कहा कि यह अच्छा हो यदि आस्ट्रिया और रूसी ही लिखा पढ़ी कर मामला तय करलें।"

जर्मन राजदूत से उसी दिन सर एडवर्ड ग्रे से बातें हुईं। उसने कहा कि आस्ट्रिया और रूस के झगड़े को अन्त करने के लिए जर्मन सरकार राष्ट्रों की पंचायतवाले प्रस्ताव से सहमत हैं किन्तु साथ ही साथ यदि आस्ट्रिया पर रूस ने चढ़ाई की तो वह आस्ट्रिया की मित्रतावश सहायता करेगा। उसने सर एडवर्ड ग्रे से जर्मन सरकार की ओर से यह भी प्रार्थना की कि वे रूस को समझावें और उस पर ज़ोर डालें कि वह युद्धक्षेत्र को बढ़ावे नहीं, आस्ट्रिया और सर्विया ही को लड़ कर मरने दे और यूरोप की शान्ति को भंग न करे। इस पर सर एडवर्ड ग्रे ने कहा था "सर्विया का उत्तर उनकी आशा से कहीं अधिक संतोषजनक था। प्रधान सचिव ने स्वयं ही यह कहा था कि आस्ट्रिया की कुछ शर्तें ऐसी हैं जिनको आशा नहीं की जा सकती कि सर्विया स्वीकार करेगा। सर्विया के मित्रतापूर्ण उत्तर को देख कर मालूम होता है कि रूस उसे दबा रहा है और अब यह आवश्यक है कि आस्ट्रिया पर जर्मनी भी वैसा ही दबाव डाले। आस्ट्रिया ने सर्विया के उत्तर को बिलकुल हीन समझ कर उससे लड़ाई ठान ली है। इसका अर्थ यह है कि बिना अच्छी तरह से यह सोचे हुए कि नतीजा कैसा भीषण होगा वह सर्विया का सब कुछ सह कर भी नाश करना निश्चय कर चुका है। कम से कम सर्विया के उत्तर को बीज मान कर उस पर लिखा-पढ़ी करना उचित है और जर्मन सरकार को इसी बात को

आस्ट्रिया को समझाना चाहिये। जर्मन सरकार देखती है कि युद्धक्षेत्र बढ़ने से भयावह फल होगा, किन्तु यह होते हुए भी आस्ट्रिया के हित की रक्षा और शान्ति के लिए जो शर्त आस्ट्रिया को विवश हो सर्विया को लिखनी पड़ी थीं उन्हें सर्विया ने अस्वीकार कर दिया है। सर्वथा अपनी इच्छा और नीति के विरुद्ध आस्ट्रिया सर्विया के प्रति अपनी नीति में परिवर्तन करने पर विवश हुआ है। हज़ार आपत्तियों को सहते हुए भी ब्रिटिश गवर्नमेंट को जैसा कि मालूम है आस्ट्रिया इधर कई बर्षों से इसी प्रयत्न में लगा है कि अपने लड़ाकू पड़ोसी सर्विया से किसी प्रकार से निभती जाय यद्यपि कुनीति पर चलनेवाले सर्विया की दिल जलानेवाली करतूतों से उसे हर घड़ी जलना ही पड़ा है। सेराजेवो की हत्या ने प्रगट कर दिया कि सर्वियन आन्दोलन ने कैसा भीषण रूप धारण कर लिया है, उससे कैसे २ भयावह प्रतिफल निकल सकते हैं और आस्ट्रिया के सर पर प्रति क्षण लटकनेवाली सर्वियन जनता और सरकार कैसी भयानक छुरी है। हम लोग समझ सकते हैं कि अब वह समय आगया है जब कि आस्ट्रियन सरकार अपनी रक्षा, सर्वियन स्वप्नों के दमन और आस्ट्रिया की दक्षिण पूर्व की सीमा पर शान्ति और नियम की रक्षा के लिए सख़्ती करे। शान्ति के साथ जो कुछ किया जा सकता था सब कुछ किया जा चुका और अन्ततोगत्वा आस्ट्रियन सरकार को अब सिवा शक्ति की दोहाई देने के अन्य कोई मार्ग नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता कि आस्ट्रिया दमन की नीति पर चलने को उद्यत है। स्वरक्षा के निमित्त ही उसे ऐसा करने पर बाध्य होना पड़ा है। आस्ट्रियन सरकार का यह भी विचार है कि ऐसा करने से वह यूरोप के हितों

की रक्षा करेगा क्योंकि गत दस वर्षों से सर्विया यूरोप को भस्म कर देने के लिए काफी अग्नि स्फुलिङ्ग फेका करता है। ब्रिटिश जाति और ब्रिटिश राजनीतज्ञों की न्याय-परायणता, आस्ट्रियन सरकार पर अपने हित की रक्षा और एक लड़ाकू पड़ोसी की शत्रुतासूचक नीति से स्वरक्षा करने के निमित्त तलवार उठाने के लिए लांछन नहीं लगा सकती।

इसी के बाद सर एडवर्ड और काउन्ट मेन्सडार्फ (आस्ट्रियन राजदूत) में बातचीत हुई। काउन्ट ने यह आशा प्रगट की कि इङ्गलैण्ड की सहानुभूति आस्ट्रिया के साथ रहेगी और यह कि ब्रिटिश सरकार ऐसा प्रयत्न करेगी कि लड़ाई सर्विया और आस्ट्रिया के बीच ही रहे।

काउन्ट ने अपनी ओर से यह भी कहा कि जब तक सर्विया के विरुद्ध टर्की खड़ा रहता था आस्ट्रिया किसी प्रकार सख़्ती से पेश आने को तैयार नहीं हुआ क्योंकि उसकी यह नीति थी कि बालकन राष्ट्र शान्ति के साथ फले फूलें किन्तु अब सर्विया ने बिना किसी प्रकार के आस्ट्रियन हस्तक्षेप के अपने प्रान्त और जन-संख्या को द्विगुणित कर लिया है। ऐसी अवस्था में स्वरक्षा के निमित्त आस्ट्रिया को सर्विया के लड़ाकूपन को दबाना आवश्यक ही नहीं वरन अनिवार्य है। उन्होंने यह भी कहा कि आस्ट्रिया कि यह तनिक भी इच्छा नहीं है कि वह सर्वियन प्रान्तों पर कब्ज़ा करे।

सर एडवर्ड ग्रे ने उत्तर देते हुए कहा कि सर्विया के जवाब का जो उत्तर अस्ट्रियन सरकार ने लगाया है उससे वे सहमत नहीं है। अनन्तर उन्होंने वे सब बातें कहीं जो उनसे और जर्मन राजदूत से हुई थीं। काउन्ट मेन्सडार्फ ने कहा कि कागज पर सर्विया का उत्तर भले ही सन्तोषजनक

दिखाई दे किन्तु सर्विया ने इस बात को—कि आस्ट्रियन प्रतिनिधि और पुलिस जाँच में शरीक हों–बिलकुल अस्वीकार कर दिया है। यदि सर्विया ने इस बात को स्वीकार किया होता तो हम लोगों को यह सुबूत मिल जाता कि अपने वचनों को वह कार्यरूप देने को भी तैयार है और आस्ट्रिया के विरुद्ध वह आन्दोलन न होने देगा। इस पर सर एडवर्ड ने कहा "कि मालूम होता है कि सर्विया के उत्तर के बाद भी आस्ट्रियन सरकार यही स्वप्न देख रही है कि वह सर्विया से युद्ध छेड़ेगी और रूस कुछ न बोलेगा। यदि आस्ट्रियन सरकार यह कर सकती है कि वह सर्विया से लड़े और रूस कुछ न बोले तो कोई हर्ज नहीं है किन्तु यदि यह नहीं हो सकता तो फल भयावह होगा। सर्विया के उत्तर के बाद रूस यह आशा करता होगा कि मामला ठंढा पड़ेगा किन्तु जब रूस को यह मालूम होगा कि मामला बढ़ रहा है तो स्थिति भीषण हो जायगी। यूरोप यों हीं बहुत चिन्ताजनक स्थिति में है। ब्रिटिश नौ-सेना को आज तितर बितर हो जाना चाहिये था किन्तु ऐसा करना हम लोगों ने उचित नहीं समझा। हम लोगों ने अभी रिज़र्व सेना को तैयार कराना उचित नहीं समझा और नौ सेना का जो प्रबन्ध किया गया है उसका भी धमकी देने का अर्थ नहीं है किन्तु संभावित यूरोपीय रणाङ्गन को ध्यान में रखते हुए नौ-सेना को छुट्टी देना उचित नहीं था। इसीसे आपको विदित हो सकता है कि यूरोप कैसा चिन्ताग्रसित है। मेरी समझ में सर्विया को जैसा उत्तर देना पड़ा है उससे उसका काफी मान मर्दन हो चुका है और आस्ट्रियन सरकार के यह समझने से कि उत्तर कुछ नहीं और कोरा नाहीं है हमारा उत्साह भंग हुआ है और हृदय में निराशा ने घर कर लिया है।

सर एडवर्ड का पाप।

पिछले परिच्छेद में २८ जुलाई तक की कार्यवाही हम दे चुके हैं किन्तु अधिकतर महत्वपूर्ण अंश इस लिए हमने बचा रक्खा था कि हम आपको साबित कर सकें कि युद्ध का सारा उत्तरदायित्व इङ्गलैण्ड के माथे है। इङ्गलैण्ड चाहता तो कभी भी यूरोपीय महाभारत न हो पाता। राजनीतिज्ञों, पर-राष्ट्र-विभागों और राज प्रतिनिधियों की बातचीत का अंश जो पाठक पढ़ चुके हैं उसे तनिक विचारपूर्वक देखने से यह प्रत्यक्ष है कि स्थिति इङ्गलैण्ड के हाथ में थी। सभी राष्ट्र इङ्गलैण्ड या

सर एडवर्ड ग्रे

का मुह निहार रहे थे। एक एक घड़ी उस समय की अमूल्य थी। ४ अगस्त को यूरोप में पूर्ण रूप से महाभारत शुरू होगया था। राजनीतिज्ञ एक एक मिनट बेचैनी से काट रहे थे किन्तु सर एडवर्ड ग्रे किसी प्रकार की कोई निश्चित बात नहीं कहते थे यद्यपि मन में उन्होंने यह निश्चित कर लिया था कि वे फ्रान्स और रूस का पक्ष लेंगे। यह निश्चय भी उन दिनों का ही नहीं था। मि० एस्किथ ने प्रधान सचिव होने के पांच ही सात दिन बाद इस बात की नीव डाल दी थी। १९०५ में

फ्रान्स से समझौता एक प्रकार का होगया था, १६११ में यह समझौता और भी दृढ़ हुआ और १६१३ में फ्रान्स के पक्ष में लड़ने का समझौता पत्थर की लकीर था। मि० लायड जार्ज के शब्दों में १६१३ में फ्रान्स से समझौता इस प्रकार का हो गया था कि फ्रान्स का साथ न देना अपनी इज़्ज़त से हाथ धोने के बराबर था।

समझौता यह गुप चुपहुआ था, पार्लामेन्ट को इसकी खबर न थी, पार्लामेन्ट में इसका विरोध भी होता और इसी लिए अन्त तक यह छिपाया गया। युद्ध की घोषणा के एक दिन पहिले तक सर एडवर्ड और मि० एस्किथ कामन्स सभा में कसमें खा खा कर कहते थे कि फ्रान्स से हम लोगों का कोई समझौता नहीं है, सदस्य साफ़ साफ़ प्रश्न करते थे और यह इङ्गलैण्ड के कर्णधार

सफेद झूठ

बोल कर यह कहते थे कि इङ्गलैण्ड अपनी नीति निर्धारित करने के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्र है। कामन्स सभा को धोखा दिया जा रहा था और साथ ही साथ अन्य राष्ट्रों को भी। यदि सर एडवर्ड यह साफ कह देते कि इङ्गलैण्ड फ्रान्स और रूस का पक्ष लेकर लड़ेगा तो युद्ध कभी न होता। जर्मनी और आस्ट्रिया कभी भी युद्ध करने पर उद्यत न होते। सर एडवर्ड जर्मनी से अलग रहने को कहते थे, आस्ट्रिया को दबाने की चेष्टा करते थे किन्तु रूस के लिए कभी एक शब्द उन्होंने नहीं कहा। इस बात को कि आस्ट्रिया और सर्विया में युद्ध होने पर रूस तुरन्त सर्विया का पक्ष ले आस्ट्रिया से लड़ेगा वे एक स्वयम्सिद्ध सिद्धान्त मानते

थे, उन्होंने कभी रूस से नहीं कहा कि सर्विया ने पाप किया है, वह पापी है, आस्ट्रिया वचन देता है कि सर्विया की स्वतंत्रता का वह अपहरण न करेगा ऐसी अवस्था में दुष्ट को दंडित होने दो, तुम अलग रहो। सर एडवर्ड जर्मनी से कहते थे कि तुम अलग रहो, रूस, आस्ट्रिया और सर्विया को हम लोग समझावें, यदि वे न मानें तो उनको लड़ने दो। सर एडवर्ड ग्रे यह नहीं सोचते थे कि रूस यदि सर्विया का रक्षक है और उसके पक्ष में उसका तलवार उठाना ठीक है तो जर्मनी भी तो आस्ट्रिया का रक्षक है और उसकी रक्षा के लिए इसका अस्त्र न उठाना ठीक न होगा। एक ओर सर एडवर्ड यह नहीं समझ सकते थे दूसरी ओर यह उनको बिलकुल प्राकृतिक दिखाई देता था कि जर्मनी के आस्ट्रिया का पक्ष लेने पर फ्रान्स रूस का साथ ज़रूर देगा और फ्रान्स का साथ न देना अन्याय होगा। होना तो यह चाहिये था कि सर्विया ने पाप किया था, आस्ट्रिया उसे सज़ा देता और सब राष्ट्र अलग रहते और इस बात पर ध्यान रखते कि पाप की अपेक्षा सज़ा अधिक न हो। किन्तु यह होता कैसे? लोग तो चाहते थे युद्ध। रूस अपने पालक का साथ क्यों न दे? यह भी यदि मान लिया जाय तो, उचित यह था कि रूस अपने पालक का साथ देता और जर्मनी अपने शरणागत का। किन्तु वहाँ तो बात ही दूसरी थी। फ्रान्स की रूस से मैत्री थी। फ्रान्स कब रुक सकता था और फ्रान्स के मैदान में आने पर इङ्गलैण्ड कब पीछे रह सकता था, उसका दामन तो फ्रान्स के साथ सिला हुआ था। अन्तिम समय तक जर्मनी और आस्ट्रिया से सर एडवर्ड ग्रे यही कहते रहे कि वे स्वतंत्र रहना पसन्द करते हैं, वे क्या करेंगे तय नहीं है, पार्लमेन्ट

ने अभी तक कुछ तय नहीं किया है । ३० जुलाई को फ्रान्स के प्रेसीडेन्ट ने ब्रिटिश राजदूत से कहा था कि यदि इस समय भी इङ्गलैण्ड यह साफ़ साफ़ कह दे कि वह फ्रान्स का साथ देगा तो जर्मनी युद्ध न करेगा । मि० सेज़नाफ रूसी सचिव की भी यही राय थी, वह भी कह रहे थे कि स्थिति पूर्ण रूप से इङ्गलैण्ड के हाथ में है, उसके तनिक हुंकार से युद्ध रुक सकता है किन्तु सर एडवर्ड ग्रे कहते कैसे, पार्लामेन्ट में तो वे कहते थे कि कोई समझौता है ही नहीं । २८ जुलाई को आस्ट्रिया ने सर एडवर्ड ग्रे की बातों से यह समझ कर कि इङ्गलैण्ड की सहानुभूति आस्ट्रिया के साथ है और यह कि युद्ध में इङ्गलैण्ड तटस्थ रहेगा सर्विया से युद्ध आरंभ कर दिया । अब भी समय था, यदि इस समय भी इङ्गलैण्ड रूस से यह कह देता कि वह उसका साथ न देगा तो रूस कभी सैन्य-संग्रह की आज्ञा न प्रचारित करता । संटपीटर्सबर्ग (पेट्रोग्राड) का २९ जुलाई का रायटर का तार यह था कि रूस इङ्गलैण्ड की सहायता में पूर्ण रूप से विश्वास रखते हुए युद्ध के लिए तैयार है ।

दोरंगी चालों

का असर यह था कि आस्ट्रिया और रूस दोनों ही समझ रहे थे कि इङ्गलैण्ड की सहानुभूति कम से कम उनके साथ है । ३० जुलाई को फ्रेंच राजदूत ने साफ़ साफ़ सर एडवर्ड से यह पूछा कि फ्रान्स के युद्ध में सम्मिलित होने पर इङ्ग-लैण्ड क्या करेगा । सर एडवर्ड ने कहा इसका उत्तर हम कल अर्थात् ३१ जुलाई को देंगे ।

३१ जुलाई को सर एडवर्ड ने फ्रैंचराजदूत मि० केम्बन से कहा कि मंत्रिमंडल ने अभी तक कोई नीति तय नहीं किया है और जहाँ तक मालूम होता है बैठे बिठाये फ्रान्स का साथ देकर युद्ध मोल लेने के पक्ष में लोग नहीं हैं। किन्तु संभव है "बेलजियम की अखंडता" के लिए इङ्गलैण्डवासी कुछ करने को तैयार हो जायँ ?

यहाँ पर यह ध्यान में रखना चाहिये कि बेलजियम का अब तक कहीं सवाल नहीं उठा था, बेलजियम ने रक्षा की सहायता के लिए कोई अपील नहीं की थी, इतना ही नहीं था वरन् बात यह थी कि तीन दिन बाद भी बेलजियम की यह पत्र राष्ट्रों को मिला था कि उनकी राय में राष्ट्रों की सहायता की उसे कोई ज़रूरत नहीं है।

जर्मनी का हाथ

जर्मनी सर्वथा युद्ध के लिए तैयार होता हुआ भी यह नहीं चाहता था कि इङ्गलैण्ड से मुठभेड़ हो। वह चाहता था कि आस्ट्रिया और सर्विया को आपस में ही समझ लेने दिया जाय। यह देख कर ही कि रूस ने सैन्य-संग्रह की आज्ञा देदी और फ्रान्स रूस का साथ देने को कटिबद्ध है जर्मनी भी तैयार हुआ। जर्मनी ने बहुत चेष्टा की कि इङ्गलैण्ड दूर रहे। जर्मनी ने इङ्गलैण्ड से कहा कि वह फ्रान्स के प्रदेशों पर कब्ज़ा न करेगा, वह बेलजियम की स्वतंत्रता का भङ्ग न करेगा, सेना के जाने आने से जो कुछ क्षति बेलजियम को पहुँचेगी उसकी युद्ध के बाद वह पूर्ति कर देगा। सर एड-वर्ड ग्रे ने उस समय पूछा था कि फ्रेंच उपनिवेशों पर तो जर्मनी कब्ज़ा न कर लेगा? जर्मनी ने उस समय इसका सीधा उत्तर हाँ या ना में नहीं दिया था। किन्तु दो एक दिन बाद जर्मनी इस पर भी तैयार होगया। पहिली अगस्त को फिर जर्मनी ने प्रयत्न किया कि इङ्गलैण्ड तटस्थ रहे। उस समय सर एडवर्ड ने बेलजियम का प्रश्न उठाया। उन्होंने कहा कि ब्रिटिश जनता बेलजियम पर आक्रमण सुन कर उद्विग्न हो जायगी। जर्मन राजदूत ने कहा कि यदि जर्मनी यह वचन देदे कि वह बेलजियम की उदासीनता न भङ्ग

करेगा तब क्या इङ्गलैण्ड तटस्थ रहेगा? सर एडवर्ड ने जवाब दिया कि इसका उत्तर हम नहीं दे सकते, हम लोग स्वतंत्र रहना चाहते हैं, अभी हम लोग तय कर रहे हैं कि हम लोगों को क्या करना चाहिये। जर्मन राजदूत ने कहा कि आख़िर किन्ही शर्तों पर इङ्गलैण्ड तटस्थ रह सकता है, फ्रान्स के प्रदेश और उपनिवेशों पर हम कब्ज़ा न करेंगे, बेलजियम की तटस्थता न भङ्ग करेंगे किन्तु सर एडवर्ड ने कहा कि हम तटस्थ रहने का किन्हीं शर्तों पर वादा नहीं कर सकते। यह पहिली अगस्त की बात थी। दूसरी अगस्त को मि० बानरला ने मि० एस्क्विथ को यह पत्र लिखाः—

"Dear Mr Asquith,

Lord Landsdown and I feel it our duty to inform you that in our opinion, as well as in that of all the colleagues whom we have been able to consult, it would be fatal to the honor and security of the United Kingdom to hesitate in supporting France and Russia at the present juncture, and we offer our unhesitating support to the Government in any measures they may consider necessary for that object

Yours very truly

A Bonor Law"

"अर्थात् लार्ड लैन्डसडाउन और मैं अपना यह कर्तव्य समझता हूं कि आपको सूचित करूँ कि हम लोगों की राय में और उन मित्रों की राय में भी जिनसे हम लोगों ने बातें की हैं इस समय फ्राँस और रूस की सहायता के लिए न खड़े होना हम लोगों के लिए बहुत भयावह होगा। हम लोग इस संबंध में, सरकार जो कुछ करना निश्चित करेगी उसमें, आप लोगों का पूर्णरूप से हाथ बटायेंगे।"

ध्यान में रहे "बेलजियम" का ज़िक्र कहीं नहीं है। फ्राँस और रूस की सहायता ही उद्देश्य था। इसी दिन सर एडवर्ड ने फ्रेंच राजदूत को एक पत्र दिया जिसमें यह लिखा हुआ था कि अगर जर्मन नौसेना उत्तरी समुद्र या चेनल में आकर फ्राँसीसी तटों पर गोलाबारी करेगी तो अङ्गरेज़ी सेना फ्राँस की हर तरह से शक्ति भर सहायता करेगी। पत्र देते समय सर एडवर्ड ने मि० कैम्बन से यह भी कहा था कि हम लोग सोच रहे हैं कि हम लोग पार्लमेंट में कल क्या कहें—बेलजियम की तटस्थता भङ्ग को युद्ध छेड़ने का कारण कहें या नहीं? इससे यह साफ सिद्ध है कि दूसरी अगस्त को ही इङ्गलैंड ने जर्मनी से लड़ना और फ्राँस की सहायता करना निश्चित कर लिया था और बेलजियम का प्रश्न कहीं नहीं था। क्या एक तटस्थ देश का धर्म यही था? तारीखवार दशा यह थी। पहिली अगस्त को जर्मन राजदूत ने सर एडवर्ड से पूछा कि यदि जर्मनी बेलजियम पर आक्रमण न करे तो इङ्गलैंड तटस्थ रहेगा या नहीं? उन्होंने ठीक उत्तर देने से इन्कार किया। जर्मन राजदूत ने फिर पूछा कि किन्हीं शर्तों पर इङ्गलैंड तटस्थ रह सकता है या नहीं? सर एडवर्ड ने फिर भी जवाब देने से इन्कार किया और दूसरी अगस्त को प्रातःकाल के समय सर एडवर्ड ने फ्रेंच राजदूत को नौसेना की सहायता का बचन दिया। सर एडवर्ड की चाल देखकर तीसरी अगस्त को जर्मन राजदूत ने लंदन के पत्रों में यह प्रकाशित किया कि यदि इङ्गलैंड तटस्थ रहना चाहे तो जर्मनी यह वचन देने को तैयार है कि वह उत्तरी समुद्र में अपनी नौसेना लाकर फ्रांस के तट पर गोलाबारी न करेगा और न वह बेलजियम या हालैण्ड के तटों पर सेना या नौसेना एकत्रित कर हमला

करेगा। इसका भी कुछ असर नहीं हुआ। चौथी अगस्त को जर्मन चाँसलर ने रेशटा में कहा कि हम लोगों ने ब्रिटिश सरकार को सूचित कर दिया है कि अगर इङ्गलैंड तटस्थ रहे तो हमारी नौ-सेना फ्रांस के उत्तरीय तटों पर अक्रमण न करेगी और सेना बेलजियम की तटस्थता न भङ्ग करेगी। कुछ न होते देख जर्मनी ने बेलजियन सरकार से आज्ञा मांगी कि जर्मन सेना को अपने प्रदेश से वह निकल जाने दें, उसका विरोध न करे, सेना के आने जाने से जो क्षति पहुंचेगी उसकी पूर्ति जर्मनी पूर्ण रूप से करेगा किन्तु यदि बेलजियम शत्रु का व्यवहार करेगा तो ज़बर्दस्ती जर्मन सेना जायगी। जर्मन सेना गई और इसी नाम पर इङ्गलैंड ने युद्ध की घोषणा की। असल बात उपर्युक्त बातों से साफ़ ज़ाहिर है। यह सच है कि जर्मनी, फ्राँस और रूस से लड़ना चाहता था किन्तु उतनी ही सत्य यह बात भी है कि इङ्गलैंड को तटस्थ बनाये रखने के लिए वह किसी भी शर्त को मानने को तैयार था। जो राजनीति में उदारता और न्याय को स्थान देते हैं वे यह समझने का व्यर्थ प्रयत्न करें कि इङ्गलैंड बेलजियम के निमित्त लड़ा। हम तो यही जानते हैं कि वह लड़ा क्योंकि सर एडवर्ड और मि० एस्क्विथ फ्राँस की सहायता के लिए वचनबद्ध थे, क्योंकि लार्ड लैंड्सडाउन, बानरला और सभी देख रहे थे कि यदि फ्रांस और रूस का साथ नहीं दिया जाता तो इनका तख़्ता तबाह होता है और फिर विजयी मदमत्त जर्मनी के सामने अकेला इङ्गलैण्ड क्या कर लेगा? नैतिक सिद्धान्त की रक्षा, उदारता और न्याय के लिए मनुष्य क्या करता है इसका भी नमूना हमको सर एडवर्ड की बातों से मिलता है। ३१ जुलाई को फ्रेंच राजदूत ने सर

एडवर्ड से कहा कि यदि जर्मनी लक्सम्बर्ग की तटस्थता भङ्ग करे तो इङ्गलैण्ड क्या करेगा? सर एडवर्ड ने कहा:—

"Our guarantee in common with other Powers of Luxemburg carried with it more "a moral sanction than a contingent liability to go to war. No party was called upon to undertake the duty of enforcing it"

कि शर्त के अनुसार अखंडता की रक्षा करना एक नैतिक सिद्धान्त की बात मात्र है उसका अर्थ यह नहीं है कि उसके लिए युद्ध किया जाय। किसी हस्ताक्षर करनेवाले के लिए यह देखना कि उसकी रक्षा की जा रही है लाज़िमी नहीं है। इन्हीं बातों के कहनेवाले चार दिन बाद ही बेलजियम की अखंडता की दोहाई दे युद्ध में सम्मिलित हो गये।

दोषी सर एडवर्ड

अब तक हमने युद्ध आरंभ होने की घटनाओं का तथा उस समय राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की करतूतों का वर्णन सब अङ्गरेज़ राजनीतिज्ञों के वचनों, लेखों, पुस्तकों और ब्रिटिश सरकारी खरीतों के सहारे किया है। सर्वथा न्याय की इच्छा रखते हुए भी इङ्गलैण्ड का पक्षपात अङ्गरेज़ हृदय से दूर नहीं हो सकता यह एक साधारण और प्राकृतिक सत्य है, इसी कारण से अब हम उन लोगों की राय के सहारे जो पक्षपात रहित हो सकते हैं सर एडवर्ड के पाप पर विचार करना उचित समझते हैं और यह देखना चाहते हैं कि क्या वाकई इङ्गलैण्ड

बेलजियम के लिए लड़ा?

सब से पहिले इस संबन्ध में हम एक अङ्गरेज़ सभ्य, वह भी साधारण श्रेणी के नहीं वरन, अर्ल आवलोरबर्न के कथनों को पाठकों के सामने रखना उचित समझते हैं। इङ्गलैण्ड के मुंह से सर एडवर्ड ने यह कहलाया था कि बेलजियम की स्वतंत्रता की रक्षा करना हमारा धर्म है क्योंकि इस संबन्ध की सन्धि की शर्त पर इङ्गलैण्ड का हस्ताक्षर है। अर्ल लोरबर्न का

कहना है कि "For the sake of historical accuracy however, it is right to say that we were not so bound either by the treaty of 1839 or by any other instrument. All that we did in 1839 was to sign, together with Austria, France, Prussia, Russia, and Holland, an agreement that Belgium should be perpetually neutral state. We bound ourselves as the others not to violate that neutrality but did not bind ourselves to defend it against the encroachment of any other power."

अर्थात् एतिहासिक सत्य की रक्षा के लिए यह कहना ज़रूरी है कि १८३६ की सन्धि या किसी अन्य प्रकारसे इङ्गलैण्ड के लिए यह ज़रूरी न था कि वह बेलजियम की रक्षा के लिए युद्ध करता। १८३६ में हम लोगों ने इतना ही किया था कि आस्ट्रिया, फ्रान्स, रूस, जर्मनी और हालैण्ड के साथ साथ एक सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर किया था जिसका आशय यह था कि बेलजियम सदा तटस्थ राष्ट्र रहेगा। हमलोगों ने, जैसा कि औरों ने, यह वचन दिया था कि हमलोग बेलजियम की तटस्थता न भङ्ग करेंगे किन्तु हमलोगों ने यह भार नहीं ओढ़ा था कि यदि कोई अन्य राष्ट्र बेलजियम की तटस्थता भङ्ग करेगा तो हम उसके साथ युद्ध करेंगे।

सच बात यह है कि १८३६ की सन्धि का मुख्य अर्थ था बेलजियम को हालैण्ड से अलग करना। नेपोलियन के समय में ज़बर्दस्ती यह राष्ट्र मिला दिये गये थे। इस राष्ट्र का जीवन सदा फ्रान्स के कारण संकट में रहता था। यह संकट जर्मनी के बलवान होने पर और भी बढ़ गया। फ्रान्स और जर्मनी में

युद्ध आरंभ होते ही प्रतिद्वन्द्वियों के लिए बेलजियम के द्वारा दूसरे पर आक्रमण करना सब से सहज उपाय था और सफलता की भी इस तरह अधिक संभावना थी। दोनों राष्ट्रों की रक्षा के लिए भी बेलजियम का तटस्थ राष्ट्र माना जाना इस प्रकार बहुत ज़रूरी था। इन्हीं सब कारणों से १८३९ में वह सन्धि हुई थी। इङ्गलैण्ड का उससे न तब और न अब ही कोई विशेष संबन्ध है।

यदि यह स्वीकार न भी किया जाय इङ्गलैण्ड का इतिहास हमारा साक्षी है। बेलजियम का सवाल अभी ही नहीं सामने आया था, फ्रान्स और जर्मनी में पहिले पहल १९१४ में ही युद्ध नहीं हुआ था, इसलिये हमको यह देखना होगा कि आदि काल में ऐसी समस्या उपस्थित होने पर इङ्गलैण्ड ने क्या किया था ?

इतिहास के पृष्ठों को उलट पुलट कर देखने से यह दिखाई देता है कि सन् १८७० में ऐसी ही बिकट समस्या इङ्गलैण्ड के सामने उपस्थित हुई थी। फ्रान्स और जर्मनी में युद्ध आरंभ होगया था, अङ्गरेज़ राजनीतिज्ञ बहुत चिन्तित थे कि बेलजियम का क्या होगा। उस समय अधिकतर संभावना यही थी कि फ्रान्स बेलजियम की तटस्थता का भङ्ग करेगा। यही नहीं यह भी भय था कि फ्रान्स सदा के लिए बेलजियम को हड़प लेगा। उस समय इङ्गलैण्ड के शासन की बागडोर

मि० ग्लैड्स्टन

के हाथ में थी। मि० ग्लैड्स्टन सर एडवर्ड की भांति किसी राष्ट्र से गुपचुप सन्धि नहीं किये हुए थे, किसी का साथ

न देने से इङ्गलैण्ड की इज़्ज़त में बट्टा नहीं लग सकता था। उन्होंने जर्मनी और फ्रान्स को लिखा कि यदि कोई राष्ट्र बेलजियम की तटस्थता भङ्ग करेगा तो उसे इङ्गलैण्ड की सेना और नौ-सेना से मुठभेड़ करना होगा। इतना ही नहीं उन्होंने यह भी लिखा कि यदि कोई राष्ट्र बेलजियम पर चढ़ाई करेगा तो इङ्गलैण्ड दूसरे राष्ट्र का साथ देकर उसका शत्रु हो जायगा।

फ्रान्स और जर्मनी के कान खड़े होगये और दोनों राष्ट्रों ने तुरन्त सन्धि-पत्र लिख कर हस्ताक्षर कर दिया कि वे बेलजियम की तटस्थता का भंग न करेंगे। युद्ध हुआ, भीषण युद्ध हुआ किन्तु बेलजियम बच गया। मि० ग्लैड्स्टन ने अपने प्रस्ताव में यह भी शर्त जोड़ दी थी कि किसी राष्ट्र के बेलजियम की तटस्थता भङ्ग करने से इङ्गलैण्ड को लड़ना पड़ा तो भी वह बेलजियम के रणक्षेत्रों में ही लड़ेगा, शत्रु राष्ट्र से लड़ने वह अन्यत्र न जायगा, क्योंकि बेलजियम की रक्षा ही इङ्गलैण्ड का उद्देश्य है। यदि वास्तव में सर एडवर्ड बेलजियम की रक्षा ही चाहते थे तो यह पुराना और सहज उपाय वह काम में ला सकते थे। जर्मनी तो इसका वचन देने को भी तैयार था कि यदि इङ्गलैण्ड लड़ाई से अलग रहे तो जर्मनी बेलजियम की तटस्थता न भङ्ग करेगा। जो उपाय १८७० में सफल हुआ था वह सहज में ही १९१४ में सफल हो सकता था किन्तु सर एडवर्ड यह चाहते कब थे, वह तो वचनबद्ध थे। मि० ग्लैडस्टन ने यह साफ़ साफ़ कह दिया था कि यदि युद्ध करना भी पड़ा तो वे बेलजियम की रक्षा मात्र के लिए लड़ेंगे और जर्मनी और फ्रान्स के परस्पर युद्ध में तटस्थ रहेंगे किन्तु सर एडवर्ड ने यह भी

नहीं किया । करते कैसे? वह तो फ्रांस को बचन दे चुके थे कि जर्मनी से युद्ध होने पर हम तुम्हारे साथ रहेंगे। सर एडवर्ड के पाप का फल भी वैसाही हुआ। मि० ग्लैड्स्टन ने बेलजियम को अक्षुण बचा लिया था किन्तु सर एडवर्ड की नीति का फल यह हुआ कि बेलजियम का सत्यानाश हो गया। सर एडवर्ड ने बेलजियम की अच्छी सहायता की। रणक्षेत्र का विस्तार उन्होंने संसार भर में कर दिया और मुफ़्त में दीन गरीबों के धन का नाश हुआ और वे मारे गये।

यह भी ध्यान में रखने की बात है कि बेलजियम का प्रश्न दूसरी अगस्त तक सर एडवर्ड ने नहीं उठाया था, तीन अगस्त को वे इस पर विचार रहे थे कि पार्लामेंट में बेलजि-यम का नाम लेकर लड़ने को कहें या नहीं? सर एडवर्ड तीन बात कर सकते थे । वह साफ साफ जर्मनी से कह सकते थे कि यदि फ्राँस से तुम्हारा युद्ध हुआ तो हम फ्राँस का साथ देंगे किन्तु वह यह कह नहीं सकते थे। फ्राँस को चुपके से वह बचन दो दे चुके थे किन्तु पार्लामेंट कभी अनुमति न देती, वहाँ विरोध होता और इसलिए वे चुप थे।

दूसरी बात जो वह कर सकते थे यह थी कि साफ़ कह देते कि हमसे इस झगड़े से कोई संबन्ध नहीं हम सर्विया के झगड़े में न पड़ेंगे, इसका यह तुरन्त असर होता कि रूस बैठ जाता, वह सैन्य संग्रह कर गड़बड़ न करता और युद्ध न होता किन्तु सर एडवर्ड यह कहते क्यों वहाँ तो मन में कुछ और ही था। तीसरी बात सर एडवर्ड यह कर सकते थे कि वह कह देते कि जो राष्ट्र बेलजियम की तटस्थता भङ्ग करेगा वह इङ्गलैंड की शत्रुता मोल लेगा। हमारा विश्वास है कि इससे

बेलजियम बच जाता, जर्मनी कभी भी तनिक लाभ के लिए इङ्गलैंड को शत्रु न बनाता किन्तु यह भी सर एडवर्ड नहीं कर सकते थे क्योंकि वे फ्रांस से बहुत पहले समझौता कर चुके थे।

इस जर्मन राजदूत और सर एडवर्ड की बातों को सर एडवर्ड के शब्दों में ही यहाँ पर उद्धृत करने की पाठकों से आज्ञा माँगते हैं। सर एडवर्ड का कथन है:—

"The ambassador pressed me as to whether I could not formulate conditions on which we would remain neutral. He even suggested that the integrity of France and her colonies might be guaranteed. I said that *I felt obliged to refuse definitely any promise to remain neutral* on similar terms and I could only say that we must keep our hands free." ..

जर्मन राजदूत इस बात को जानना चाहता था कि इङ्गलैण्ड किस शर्त पर तटस्थ रह सकता है या नहीं। उसने बेलजियम की तटस्थता भङ्ग न करने का वचन दिया। सर एडवर्ड राज़ी नहीं हुए उस पर उसने यह भी कह डाला कि जर्मनी फ्राँस और उसके उपनिवेशों पर भी कब्ज़ा न करने का वचन देगा यदि इङ्गलैंड तटस्थ रहना मंजूर करे किन्तु सर एडवर्ड ने कहा कि मैं तटस्थ रहने का वचन नहीं दे सकता ....

अगर भाषा के कोई मानी हैं तो इसका अर्थ यह है कि मि० ग्लैडस्टन बेलजियम की रक्षा के निमित्त युद्ध करने को तैयार हो गये और उन्होंने बेलजियम को बचा लिया उसके

बिपरीत सर एडवर्ड ने बेलजियम की रक्षा का वचन पाते हुए भी युद्ध से अलग रहना मंजूर नहीं किया और इस तरह से बेलजियम का सत्यानाश करा दिया ।

यह साफ़ साफ़ सिद्ध करता है कि सर एडवर्ड युद्ध चाहते थे और युद्ध का उत्तरदायित्व उनपर है ।

तिथि वार देखने से भी ज्ञात होता है कि शनिवार १ अगस्त को सर एडवर्ड ने जर्मन राजदूत से उन शर्तों को बतलाने से साफ़ इन्कार किया जिन पर इङ्गलैंड तटस्थ रह सकता था । दूसरी अगस्त को फ्रांस को उन्होंने नौ सेना-की सहायता का वचन दे दिया, उसी समय फ्रेंच राजदूत से उन्होंने कहा था कि ब्रिटिश मंत्रिमंडल इस विचार में पड़ा हुआ है "Whether or not to treat violation of Belgian neutrality as a Casus belli." बेलजियम की तटस्थता के भङ्ग को युद्ध का कारण कहना या समझना चाहिये या नहीं ?

रा० विल्सन की गवाही

हम या हमारे ही ऐसे कुछ टीका-टिप्पणी करनेवाले, उत्तरदायित्वहीन लेखक या राजनीतिज्ञ हो सर एडवर्ड को दोषी समझते हों सो बात नहीं है। इङ्गलैण्ड चाहता तो युद्ध रुक जाता, मगर एडवर्ड ग्रे यदि साफ़ साफ़ कह देते कि इङ्गलैण्ड, फ्रान्स और रूस का साथ देगा तो युद्ध रुक जाता, यह अमरीका के राष्ट्रपति विल्सन का भी विश्वास है। रा० विल्सन ने एक जगह पर कहा है:—"A plain timely statement to Germany that if she attacked France, England would be in the side of France and Russia would for a certaintv have prevented war" अर्थात् साफ़ साफ़ यह कह देने से कि युद्ध आरंभ होने पर इङ्गलैण्ड फ्रान्स और रूस का साथ देगा युद्ध अवश्यमेव रुक जाता।"

युद्ध बेलजियम के लिए नहीं लड़ा गया इसका भी सुबूत हमको रा० विल्सन के एक व्याख्यान से मिलता है जिसे उन्हों ने शुक्रवार ५ सितंबर १६१६ को यूरोपीय महाभारत के संबन्ध में न्यूयार्क में दिया था। उन्होंने कहा था "This was a commercial and economic war and not a political one" अर्थात् यह युद्ध व्यापारिक और आर्थिक था, यह राजनैतिक युद्ध न था। हमारा भी विश्वास यही है।

युद्ध की तैयारी पहिले से थी और युद्ध के बहुत दिन पहिले ही यह तय हो चुका था कि मुख्यतः कौन किसका साथ देगा। ईश्वर जाने विश्वास करने की यह बात है या नहीं किन्तु रूसी बोलशविकों ने क्रान्ति के बाद रूसी पर-राष्ट्र-विभागों के कागज़ातों से राष्ट्रों की गुप्त सन्धियों को जो प्रकाशित किया उसी के साथ ही साथ इस युद्ध का रहस्य भी इन्होंने खोल दिया है।

दिल दहलाने वाला रहस्य

कागज़ातों में इस प्रकार लिखा हुआ था:—रूस कुस्तुन्तुनिया पर बहुत दिनों से कब्ज़ा करना चाहता था। १६०६ में रूस ने इटली को मिलाया और २४ अक्टूबर १६०६ में दोनों में एक समझौता हो गया। रूस ने इटली से कहा कि वह ट्रिपली में क़दम बढ़ावे, रूस मदद करेगा। इसके बदले में रूस ने कुस्तुन्तुनिया पर कब्ज़ा करने में इटली की सहायता मांगी। इटली इसपर राज़ी हो गया। दो वर्ष बाद १६११ में ट्रिपली का युद्ध हुआ और इटली ने राज्य विस्तार किया। रूस, फ्रान्स से भी वचन ले लेना चाहता था। रूसी राजदूत इस्वोल्सकी प्रेसीडेन्ट प्वाइनकेयर से मिला और बात करते हुए प्रे० प्वाइनकेयर ने कहा If a conflict with Austria should involve Germany's armed intervention, France will at once recognise it as a *casus foederis* and will not lose a single minute in fulfilling her pledges to Russia. अर्थात् 'यदि आस्ट्रिया से युद्ध छिड़ने पर जर्मनी आस्ट्रिया की सहायता को दौड़ा तो फ्रान्स तुरन्त ही रणक्षेत्र में रूस को सहायता को उतर पड़ेगा।' फ्रान्स से वचन प्राप्त

कर रूसी परराष्ट्र-सचिव मि० सेज़नाव सितम्बर १६१२ में इङ्गलैण्ड पहुंचे। वहां पर उन्होंने सर एडवर्ड ग्रे से रूस और फ्रान्स की गुप्त-सन्धि की बात कह सुनाई। उन्होंने कहा कि फ्रान्स ने यह वादा किया है कि वह अपनी नौ-सेना की सहायता से रूस की मदद करेगा और आस्ट्रियन नौ-सेना को वह काले महासागर में न घुसने देगा। दक्षिणी रणक्षेत्र में इस प्रकार से फ्रान्स रूस का सहायक होगा। यदि इसी प्रकार से इङ्गलैण्ड भी उत्तरीय समुद्र में जर्मन नौ-सेना को न घुसने देने का भार अपने ऊपर ले ले तो फिर रूस मनमाना करले। सर एडवर्ड ग्रे ने तुरन्त ही बिना तनिक भी संकोच के उत्तर दिया कि "if the situatian in question occured England would do everything to inflict the heaviest blow on German Power 'यदि ऐसी स्थिति उपस्थित हुई तो इङ्गलैण्ड जर्मन शक्ति को ज़बर्दस्त धक्का देने के लिए कोई बात उठा न रक्खेगा!' सब से विचित्र बात यह है कि सेज़नाव ने ज़ार को लिखा था कि कुछ बातें सर एडवर्ड ग्रे से किङ्ग जार्ज के सामने हुई थीं और किङ्ग जार्ज, ग्रे से भी अधिक जोश से बातें कररहे थे। सेज़नाव ने ज़ार को लिखाथा "With obvious excitement His Majesty referred to Germany's efforts to be equal to Great Britain in naval-power and exclaimed that in the event of a conflict the consequences must be disasterous not only to German navy but also for Germany's maritime trade, for we shall sink every single German merchant-ship we can get hold of." These last words reflect, apparently not only the private senti-

ments of His Majesty but also the prevailing English attitude with regard to Germany." अर्थात् 'सम्राट् जार्ज ने बड़े जोश से कहा कि युद्ध होने पर जर्मन नौ-सेना को ही नहीं वरन् जर्मन व्यापारी बेड़े को भी भीषण क्षति पहुंचनी चाहिये क्योंकि हम लोग प्रत्येक जर्मन जहाज़ को, जो हाथ लगेगा, डुबो देंगे" यह सितंबर १९१२ की बात है।

सर एडवर्ड का झूठ

युद्ध के दो मास पहिले जून, १९१४ में कामन्स सभा में मि० किङ्ग और सर विलियम बाइल्स के यह प्रश्न करने पर कि रूस और इङ्गलैण्ड में नौ-सेना की सहायता के संबंध में कोई गुप्त सन्धि तो नहीं स्थापित हुई है या होनेवाली है और इस नीति का हमारे और जर्मनी के संबन्ध पर क्या प्रभाव पड़ेगा, सर एडवर्ड ग्रे ने दिन दहाड़े कहा था कि यूरोपीय महाभारत के छिड़ने पर इङ्गलैण्ड सम्मिलित होने या न होने के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्र होगा, इङ्गलैण्ड की स्वतंत्रता के मार्ग में किसी गुप्त-सन्धि की रुकावट नहीं है। मि० किङ्ग के यह प्रश्न करने पर कि रूस और फ्रान्स ने कोई समझौता इङ्गलैण्ड से इस संबन्ध में करना चाहा था या नहीं कि यूरोप में युद्ध छिड़ने पर इङ्गलैण्ड, फ्रान्स और रूस मिल कर काम करें और यह कि इङ्गलैण्ड स्वतंत्ररूप से काम कर सकेगा या नहीं, सर एडवर्ड ग्रे ने कहा था कि प्रश्न के पहिले भाग का उत्तर नहीं है, दूसरे के संबन्ध में हमको इतना ही कहना है कि इङ्गलैण्ड की आज भी वही स्थिति है जो २४ मार्च, १९१३ को थी। स्थिति क्या थी सो प्रधान-सचिव ने ऐसा ही प्रश्न उपस्थित होने पर बतलाया था। २४ मार्च १३ को दो

सदस्यों ने मि० एस्किथ से प्रश्न किया था कि फ्रान्स से कोई ऐसा समझौता तो नहीं है कि कोई विशेष समस्या उपस्थित होने पर इङ्गलैण्ड की स्थल-सेना फ्रान्स की सहायता करे। मि० एस्किथ ने जवाब में कहा था कि "As has been repeatedly stated this country, is not under any obligation public and known to Parliament, which compels it to take part in any war" जैसा कि बार बार कहा जा चुका है इङ्गलैण्ड पर किसी तरह का आग्रह नहीं है जो कि इसको किसी युद्ध में शरीक होने के लिए विवश करे।" हम किसको सच्चा समझें ?

एक ओर तथ्य बातें हैं जो सरीहन नज़रों के सामने आई, एक ओर मि० एस्किथ, सर एडवर्ड ग्रे हैं, एक ओर मित्र राष्ट्रों की दोहाई है, एक ओर बोलशविक सरकार है और सब के साथ साथ सत्य और झूठ को पहचाननेवाली अपनी बुद्धि है।

सर एडवर्ड की धमकी

लड़नेवाले लड़ाना चाहते थे, वे अशान्ति के प्रेमी थे, स्वार्थ से वे अन्धे थे, गरीबों का खून चूस कर, उनकी गरदने कटवा कर वे मालामाल होना चाहते थे इसका एक और भी सुबूत अभी संसार को मिला है। फ्रान्स के पर-राष्ट्र विभाग के भूतपूर्व सचिव और प्रसिद्ध ऐतिहासिक मि० जेबरील हेनाटाक्स ने "युद्ध का इतिहास" नामक पुस्तक प्रकाशित की है। पहिली जिल्द में उन्होंने अकाट्य प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि अमरीका की व्यापारी मिसर्स जे० पी० मार्गन एन्ड कम्पनी ही यूरोपीय महाभारत की प्रवर्तक थी। हम स्वयम इस कम्पनी के बारे में जो कुछ थोड़ा बहुत जानते हैं उससे मि० हेनाटाक्स को बातों को हम विश्वास की दृष्टि से देखते हैं। यह कम्पनी राष्ट्रों को लड़ाकर, उनको कर्ज़ देकर, उनको युद्ध का सामान पहुंचा कर हर तरह से राष्ट्रों के धन से अपने साझीदारों को अति अधिक डिवीडेन्ड बाटा करती है। फ्रान्स को हर प्रकार से त्रस्तकरा और दिवालिया बना कर अब यह उससे ७) सैकड़ा सूद माँग रही है. कहती है कि हम फ्रान्स को फिर से ताज़ा करने के लिए जितने धन

की आवश्यकता है देंगी। यही कम्पनी अमरीका, इङ्गलैण्ड, फ्रान्स और जापान के कुछ धन कुबेरों को मिलाकर यह प्रबन्ध कर रही है कि चीन को कर्ज़ दिया जाय। अस्तु। मि० हेनाटाफल ने अपनी पुस्तक में सिद्ध किया है कि फ्रान्स को युद्ध में सम्मिलित रखने के लिए फ्रान्स से धनकुबेरों ने वादा किया था कि हम लोग अमरीका को तुरन्त युद्ध में शरीक होने को विवश करेंगे। इन सब बातों में मार्गन कम्पनी का साथ इङ्गलैण्ड दे रहा था। सब से

गूढ़ रहस्य

जो इस सम्बन्ध में मालूम हुआ यह है कि मार्न के युद्ध के बाद जिसमें फ्रान्स ने नाममात्र की विजय प्राप्त की थी फ्रान्स जर्मनी से सन्धि कर युद्ध से अलग होने को उतावला था किन्तु फ्रान्स के मन की मन ही में रह गई। कुछ लोगों को लंदन में इसका पता लग गया और तुरन्त ही फ्रान्स को इङ्गलैण्ड ने अलटिमेटम, धमकी या अन्तिम सूचना भेज दी। फ्रैंच सरकार पेरिस छोड़ कर बोर्डों में जा बैठी थी। इङ्ग-लैण्ड ने लिखा था कि यदि फ्रान्स जर्मनी से सन्धि कर युद्ध से अलग होगा तो ब्रिटिश नौसेना फ्रान्स के चारो ओर घेरा डाल देगी और फ्रान्स में कोई वस्तु आजा न सकेगी। फ्रान्स लाचार हो गया और युद्ध जारी रहा। यदि उपर्युक्त बात ठीक है तो पाठक स्वयम् सोच लें कि धर्म, मर्यादा की रक्षा और बेलजियम के लिए यह युद्ध कहाँ तक लड़ा गया।

बेलजियम की व्यर्थ दोहाई

रूसी सरकार ने जो गुप्त कागज़ात प्रकाशित किये उन पर विश्वास किया जाय या नहीं, अन्य बातें जो हम लिख चुके हैं इस बात को पूर्णतया सिद्ध करती हैं कि सर एडवर्ड वचनबद्ध थे और वे जर्मनी के विरुद्ध फ्रान्स और रूस का साथ देने को कटिबद्ध थे। उन्होंने वादा गुपचुप किया था, पार्लामेन्ट को इसका पता नहीं था इसीलिए खुले शब्दों में वे कुछ अन्त तक कह नहीं सकते थे। वे यह भी जानते थे कि इङ्गलैण्ड निवासी फ्रान्स के नाम पर कटने मरने को तैयार न होंगे और पार्लामेन्ट में खुला विरोध होगा इसलिए वे इस फिक्र में लगे हुए थे कि किसी तरह पार्लामेन्ट से युद्ध की आज्ञा मिल जाय। इङ्गलैण्ड की जनता युद्ध के विरुद्ध थी इसके सुबूत में मि० लायड जार्ज वर्तमान प्रधान सचिव के शब्दों को ही हम पाठकों के सामने रखदेना चाहते हैं। मार्च १९१५ की "पीयरसन्स मेगज़ीन" में मि० लायर्ड जार्ज की एक समाचार पत्र के प्रतिनिधि की भेट का हाल छपा है। मि० लायर्ड जार्ज ने बातें करते हुए कहा था " The Saturday after war had actually been declared on the continent (Saturday 1st august) a poll of the electors of Great Bretain would hade shown 95 p. c. against embroiling this country in hostilities. Powerful city financiers whom it was my duty to interview this Saturday on the financial

situation ended the Conference with an earnest hope that Britain wou'd keep out of it. "अर्थात् पहिली अगस्त को यदि ग्रेट ब्रिटेन के निवासियों की राय ली जाती तो ९५ फी सदी की यह राय होती कि इङ्गलैण्ड युद्ध से अलग रक्खा जाय। शहर के बड़े बड़े धनकुबेर जिनसे आर्थिक समस्या के सम्बन्ध में मिलना उस समय मेरा काम था सब बातों के अन्त में यही अभिलाषा ज़ाहिर करते थे कि इङ्गलैण्ड युद्ध से अलग रहे।"

फ्रान्स के लिए युद्ध करने के संबन्ध में मंत्रि-मंडल में भी मतभेद था। इसका सुबूत हम नहीं दे सकते किन्तु उस समय के सदस्यों की वक्तृताओं से पता लगता है कि मि० लायड जार्ज और इनके कुछ साथी फ्रान्स की सहायता के अर्थ युद्ध मोल लेने के विरुद्ध थे। किन्तु यह विरोध ठीक ठीक दशा मालूम होने पर और यह विदित होने पर कि राय कायम करने की स्वतंत्रता दिखावटी है वास्तव में बात पहिले तय हो चुकी है, ठंढा पड़ गया। इस संबन्ध में हम फिर अर्ल आव् लोरबर्न के शब्दों को उद्धृत करने की पाठकों से क्षमा चाहते हैं। अर्ल ने लिखा है "The nation found itself bound by obligations of honor contracted toward France in secret, and that was what constrained us to enter upon this war, whether Belgium were invaded or not. We should have gone to war on behalf of Belgium if we had not already done so on behalf of France." अर्थात् राष्ट्र गुपचुप फ्रान्स से की गई सन्धि से विवश था, वादे के विरुद्ध आचरण करने से मान मर्यादा और इज़्ज़त में बट्टा लगता और इसी कारण से हमलोग युद्ध में सम्मिलित हुए, बेलजियम पर हमला होता या न होता। हम लोग बेलजियम की रक्षा के निमित्त ज़रूर युद्ध में सम्मिलित

होते अगर हमलोग फ्रान्स के लिए पहिले ही शरीक न हो चुके होते"। बात भी ठीक यही है क्योंकि बेलजियम पर आक्रमण होने के पहिले ही फ्रान्स को नौ-सेना की सहायता का वचन दूसरी अगस्त को देदिया गया था। इसके सिवाय हम से यह भी छिपा नहीं कि सर एडवर्ड तटस्थ रहना नहीं चाहते थे और इसी कारण से वे बार बार पूछे जाने पर भी यह नहीं बतलाते थे कि आखिर किन्हीं शर्तों पर इङ्गलैण्ड तटस्थ रह सकता है या नहीं। बेलजियम का नाम केवल इसलिए लेना पड़ा क्यों कि मंत्रि-मंडल के कितने ही सदस्य आरंभ में फ्रान्स के लिए युद्ध मोल लेने के विरोधी थे।

मि० लायड जार्ज ने समाचार पत्र के प्रतिनिधि से यह भी कहा था "But this I know is true after the guarantee given that the German fleet would not attack the coast of France or annex any French territory. I would not have been party to a declaration of war had Belgium not been invaded and I think I can say the same thing for most if not all of my colleagues" अर्थात् "किन्तु यह सत्य है कि जर्मनी जब कि वह वचन दे चुका था कभी भी फ्रान्स के तट पर हमला न करता और न वह फ्रेंच प्रदेशों पर ही कब्ज़ा करता, मैं कभी भी युद्ध के लिए राय न देता यदि बेलजियम पर हमला न किया गया होता, मेरी ही नहीं यदि मंत्रि-मंडल के समस्त नहीं तो अधिकतर सदस्यों की मनसा कुछ ऐसीही थी"। सब कुछ था किन्तु कोई कुछ कर न सका। यह मालूम होते ही कि इङ्गलैण्ड के "वचन" का प्रश्न है सब ने प्रतिज्ञा पालन अपना धर्म समझा और सर एडवर्ड ने तो दूसरी अगस्त कोही फ्रान्स को नौ-सेना की सहायता का वचन देदिया था।

जर्मनी दोषी है ?

जर्मनी शुरू से इस बात की चेष्टा कर रहा था कि युद्ध के रणक्षेत्र का विस्तार न हो, इङ्गलैण्ड को तटस्थ रखने केलिए उसने जो उद्योग किया वह भी पाठकों सेछिपा नहीं। सब तरह से विवश होकर उसने बेलजियम से प्रार्थना की कि मित्र की भांति जर्मन सेना को बेलजियम द्वारा निकल जाने दिया जाय, क्षति-पूर्ति के लिए भी वह तैयार था किन्तु चारों ओर विरोध देख कर और इसको ध्यान में रख कर कि वह रूस और फ्रान्स के बीच में हैं और दोनों ओर से शत्रु सेना उस पर चढ़ दौड़ेंगी, उसके लिए ज़बर्दस्ती बेलजियम की तटस्थता भङ्ग करने के सिवा कोई उपाय हो नहीं था। इङ्गलैण्ड तटस्थ नहीं रहेगा यह सर एडवर्ड ग्रे की करतूतों से वह समझ चुका था, ऐसी अवस्था में स्वरक्षा और शत्रु मर्दन के हेतु उसे बेलजियम की अवहेलना करना ज़रूरी था। सवाल आत्मरक्षा का था.जो सर्वोपरि है और जो किसी मर्यादा का पूजक नहीं। कैसर को गाली देना फैशन हो गया है, यह कहना कि वह लड़ाकू थे और युद्ध कर यूरोप को त्रस्त करना उनका निश्चित उद्देश्य था सरासर भूल है। कैसर शान्ति के पक्षपाती थे और विगत बीस वर्षों में कितनेही अवसरों पर उन्हीं के शान्ति प्रेम से योरोप में युद्ध न हो सका। यह हमारी ही राय हो सो नहीं है। बर्लिन स्थित फ्रेंच राजदूत भी जूल्स

कैम्बन ने १९१३ में कैसर के संबन्ध में अपनी सरकार को कुछ लिखते हुए लिखा था " The Kaiser had exerted on many critical occasion his personal influence in favor of peace" कैसर ने कितने हो संकट के अवसरों पर अपने व्यक्तिगत प्रभाव के ज़ार से शान्ति कायम रखी है। यूरोपीय महाभारत के समय में हो कैसर के संबन्ध में यह विश्वस्त रूप से वर्णन किया जाता था यद्यपि इसका सुबूत कोई नहीं है कि It is said that General Moltke chief of German General staff, returned home from the council room on the critical day in 1914 worn out by the efforts he had made in order to get the Kaiser's assent to the step which brought on the war, and even that, when the Kaiser signed the ultimatum to Russia he said, addressing the Generals, that it was they ought to have signed it, not himself and he hoped they would not live to repent of it " जर्मन सैनिक दल के अध्यक्ष जनरल मोल्टके बहुत थके मारे कौंसिल भवन से वापस आये क्योंकि कैसर से अपनी इच्छानुकूल कार्य कराने में उनको बहुत परिश्रम करना पड़ा था। यह सब होते हुए भी कैसर ने रूस की अन्तिम सूचना पर हस्ताक्षर करते हुए जनरलों से कहा, "वास्तव में हस्ताक्षर आप लोगों को करना चाहिये मुझको नहीं, मैं आशा करता हूं कि पछताने के लिये आप लोग ज़िन्दा न बचेंगे"। यह जानते हुए भी जो युद्ध का भार कैसर के माथे धरते हैं उनके संबन्ध में कुछ न कहना ही हम उचित समझते हैं। कैसर अन्त तक शान्ति के लिए प्रयत्न करते रहे। ३० जुलाई को प्रिन्स हेनरी आव् पर्शिया ने सम्राट जार्ज को इस आशय का तार दिया था "कैसर सच्चे हृदय से युद्ध

रोकने की चेष्टा कर रहे हैं किन्तु यदि उनके पड़ोसी युद्ध की तैयारी करते रहे तो उनको भी विवश होना पड़ेगा क्योंकि राष्ट्र को अरक्षित वह नहीं रहने दे सकते"। ३१ जुलाई को कैसर ने ज़ार को तार भेजा था। उन्होंने लिखा था "आपकी इच्छानुसार हम मामला शान्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं किन्तु यह बहुत अनुचित है कि आप इसी समय में सैन्य संग्रह कर रहे हैं। बापदादों के समय से हमारे और आपके कुटुम्ब में मित्रता चली आई है अब भी यदि आप युद्ध की तैयारी करना बन्द कर दें तो यूरोप में शान्ति रह सकती है"।

जहाँ तक मालूम होता है ज़ार सैन्य संग्रह की आज्ञा २९ जुलाई को दे चुके थे। आज्ञा प्रचारित होने के बाद उनको कैसर का तार मिला और उन्होंने युद्ध-मंत्री से तुरन्त जर्मनी के विरुद्ध सैन्य-संग्रह करने को मना किया। किन्तु युद्ध मंत्री और सेना के अध्यक्ष ने आज्ञा की अवहेलना की और तैयारी जारी रही। ज़ार को इसका पता न था। जर्मन राजदूत ने जब ज़ार से शिकायत की तब रूसी अधिकारियों ने साफ झूठ बोल कर कह दिया तैयारी नहीं हो रही है। ३० जुलाई को रूसी अधिकारियों ने सभा कर पूरी तैयारी करना निश्चित किया और तुरन्त ही उन्होंने आज्ञापत्र पर ज़ार से हस्ताक्षर करा लिया। इस तरह से ३० जुलाई को रात्रि के समय ही ज़ार का हस्ताक्षर हो चुका था किन्तु इङ्गलैण्ड और फ्रान्स को इसकी कोई सूचना न थी। रूसी सैन्य संग्रह की आज्ञा का समाचार पाकर ही कैसर ने सैन्य संग्रह का हुकम जारी किया था। इतना सब कुछ होते हुए भी सब दोष कैसर और जर्मनी के माथे यदि मढा जाय तो उसका रोना ही क्या?

राष्ट्र-धर्म ।
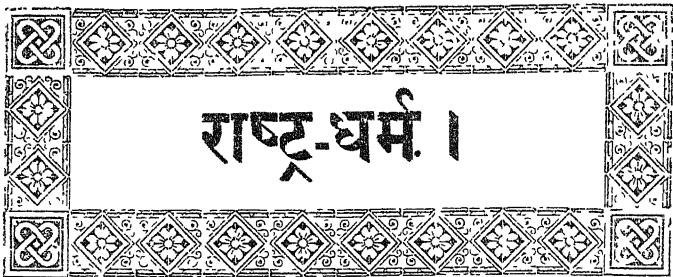
Success is after all the highest Moralty in international Politcs.

जर्मन जनता और कैसर निर्दोष थे और हैं किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि युद्ध का उत्तरदायित्व जर्मनी पर नहीं है। जर्मनी के लिए, जैसा की आरंभ में हम दिखला चुके हैं, लड़कर मरने या आगे बढ़ने का समय उपस्थित था। जर्मनी को बढती हुई जनता के भोजन के लिए साम्राज्य विस्तार की आवश्यता थी। संसार के प्रायः सभी विभाग बट चुके थे, स्थान केवल मध्य और पूर्वीय एशिया में मिल सकता था। इसी हेतु जर्मनी टर्की से मैत्री कर बगदाद रेलवे का स्वप्न देख रहा था जिसकी सहायता से अरेबिया, मेसोपोटामिया तथा भारत के आस पास की बाज़ारों पर उसका कब्ज़ा हो सकता। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए यह आवश्यक था कि दक्षिण यूरोप और बालकन प्रदेश में जर्मनी का दबदबा रहे। इसी लिए जर्मनी सदा आस्ट्रिया की सहायता को तैयार रहता था। एक ओर दशा यह थी दूसरी ओर रूस भी इन्हीं प्रदेशों पर अपनी प्रभुता

चाहता था और इस लिए जर्मनी और आस्ट्रिया का रंग-भङ्ग करने के हेतु वह सदा सर्विया को उत्साहित किया करता था। कुस्तुन्तुनिया, लिवाँट मेसोपोटामिया आदि में रूस भी प्रभाव चाहता था, जर्मनी प्रतिस्पर्धी था, वह मार्ग में कंटक था इस लिए जर्मनी का वह शत्रु था।

जर्मनी दिन दिन शक्तिशाली होरहा था। व्यापार में, व्यवसाय में, स्थल-युद्ध में जर्मनी सर्व-श्रेष्ठ था। स्थल पर वह अयोध्य था, जल-सेना वह ज़ोरो से बढ़ा रहा था और संभव था कि एक दो वर्षों में वह जल पर भी अयोध्य हो जाता, उस समय इङ्गलैण्ड का दबदबा कम होता इस लिए इङ्गलैण्ड को जर्मनी फूटी आँख नहीं सोहाता था। यह तो था ही, इसी के साथ ही साथ जिस समय इङ्गलैण्ड ने यह देखा कि जर्मनी का प्रभाव टर्की में बढ़ रहा है और संभवतः कुस्तुन्तुनिया से फारस की खाड़ी के समस्त व्यापारी पथों पर जर्मनी का प्रभाव होजायगा और इस तरह ब्रिटिश साम्राज्य के हृदय के इर्दगिर्द की भूमि पर जर्मनी का रङ्ग रहेगा, उसका माथा ठनका। जर्मनी जो रेल चला रहा था उससे ब्रिटिश व्यवसाय, ब्रिटिश धन और ब्रिटिश व्यवसायी जहाज़ों को बहुत बड़ी क्षति पहुंचती। इसी रेल के कारण रूस और टर्की में फ्रान्स की पूंजी को धक्का पहुंचता था, साथ ही साथ सीरियन तटों पर के फ्रान्सीसी स्वप्नों का भी अन्त होता था। इस लिए फ्रान्स भी जर्मनी की जान का भूखा था।

सच बात तो यह है कि संसार के अधिकतर अंश का भविष्य, जैसे प्राचीन समय में वैसे ही आज भी, निकट पूर्वीय प्रश्नों के ठीक ठीक हल होने पर निर्भर है।

१९१४ में ही नहीं पिछले सौ वर्षों में इङ्गलैण्ड और रूस, बाद में इङ्गलैण्ड और फ्रान्स और अन्त में इङ्गलैण्ड और जर्मनी सदा बासफरस, मध्य भूमध्य सागर और बगदाद रेलवे के नाम पर लडते रहे हैं और लड़ते रहेंगे। इङ्गलैण्ड सदा इन प्रदेशों पर कब्ज़ा रखना अपना प्रधान कर्तव्य समझता रहा है। यही प्रदेश ब्रिटिश साम्राज्य की कुंजी है। वास्तव में बात यह है कि यह प्रदेश उसके आर्थिक और औद्योगिक प्रभुत्व के "जिबराल्टर" हैं। इस समय भी कुस्तुन्तुनिया पर कब्ज़ा, सुलतान को लुंजपुंज करने की इच्छा, आर्मीनिया का अमरीका को वली अहद बनाने का उद्योग इन सभी चालों का एक मात्र गुप्त रहस्य वही इन प्रदेशों पर प्रभुत्व जमाना है। जैसे यूरोपीय इतिहास के आरंभ काल से वैसेही आज भी यूरोप की श्री समृद्धि और यूरोपीय राष्ट्रों की जीवन यात्रा "लिवाँट" के आस पास की भूमि पर कब्ज़ा के अधीन है।

इसी कारण से इङ्गलैण्ड पिछले सौ वर्षों से बराबर इस लिए लड़ता रहा कि किसी राष्ट्र का प्रभुत्व संसार के इस विभाग में न जम जाय। इसी लिए इङ्गलैण्ड ने मिश्र पर हाथ साफ किया, इसी लिए उसने स्वेज़ केनाल को खरीदा, इसी हेतु वह यूरोप-भारतीय मार्गों पर प्रभुत्व रखता था और इसीलिए सुदूर पूर्वीय भागों के सम्बन्ध में सदा उसकी यही नीति रही। जर्मनी का बढ़ना उसके एशिया, भारतीय तथा सभी पूर्वीय व्यापार के लिए हानिकर था और बगदाद रेलवे से इङ्गलैण्ड का जहाजी एकाधिपत्य कम होता। ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के निमित्त इसी लिए इङ्गलैण्ड को जर्मनी का अन्त करना ज़रूरी था। जिस प्रकार जर्मनी के लिए लड़ना मरना

ज़रूरी था उसी तरह से लड़ना मरना इङ्गलैण्ड के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक था। रूस और फ्रांस की भी यही दशा थी और इसी हेतु राष्ट्र-धर्म की दोहाई देकर यह सब लड़े। यही सत्य बात है। जनता युद्ध के विरुद्ध थी, राजे विरुद्ध थे किन्तु राजनीतिज्ञ कूटनीतिज्ञ और सैनिकदल वालों ने युद्ध कराही दिया। जर्मनी का सैनिक दल, इङ्गलैण्ड का सैनिक दल और कूटनीतिज्ञ, आस्ट्रिया का सैनिक दल, फ्रान्स के साम्राज्यवादी और पूंजी-पति और रूस का युद्ध-मंत्रि-मंडल, सब युद्ध चाहते थे और जनता के विरुद्ध होते हुए भी इन लोगों ने शब्दाडम्बर, वाक्य रचना, और धर्म तथा मर्यादा की दोहाई देकर युद्ध करा दिया। राष्ट्र-धर्म की आज्ञा यही थी।

युद्ध की शिक्षा

युद्ध अनिवार्य नहीं था, वह रुक सकता था, कम से कम कुछ वर्षों के लिए वह स्थगित हो सकता था किन्तु यह हो न सका क्योंकि परराष्ट्र विभाग का द्वार चारो ओर से बन्द रहता है और वहाँ की कार्यवाहियां गुप्त रहती हैं, क्योंकि राष्ट्र गुपचुप सन्धियाँ कर लेते हैं जिनका पता लोगों को नहीं रहता। क्योंकि युद्ध विभाग मंत्रि-मंडल सैनिकों के अधीन रहता है, असैनिकों की हवा वहाँ नहीं पहुंचने पाती, क्योंकि कृषकों और श्रमजीवियों, जिनके सर पर युद्ध का भार पड़ता है और जो इस भार-वहन में अपनी जाने देते हैं, की आवाज युद्ध की घोषणा में नहीं होती। क्योंकि वास्तव में राष्ट्र इस समय भी सम्पत्ति-शालियों और साम्राज्यवादियों की इच्छा के अनुसार संचालित होते हैं और क्योंकि पश्चिमीय सभ्यता इन्द्रिय-परायणता की चेरी है और धार्मिक और नैतिक भावों का उससे किंचित मात्र भी लगाव नहीं है।

यदि परराष्ट्र विभाग में बाहर की हवा आने दी जाय, यदि उसकी बातों पर भी खुला विचार हो, यदि जीवन मरण के प्रश्न के हल करने में उनका भी हाथ हो जो वास्तव में मरते हैं तो सौ में ९९ युद्ध रुक सकते हैं। यह युद्ध रुक सकता था इस संबन्ध में हम कितने ही सूबूत दे चुके हैं, इस समय हम इसी संबन्ध को एक बात को ही जिसे मि० बानरला ने कामन्स सभा में १८ जून १९१८ को कहा था आपको सुना देना चाहते हैं। मि० बानरला ने कहा था "It has been commonly said—I think it is very likely true that if the Germans had known for certain that Great Britain would have taken part in this war, the war would never have occured." अर्थात् यदि जर्मनी यह समझता कि इङ्गलैण्ड ज़रूर ही लड़ेगा तो युद्ध कभी न होता किन्तु सर एडवर्ड गुप्त सन्धि कर चुके थे, वचन दे चुके थे, परराष्ट्र विभाग की कार्यवाहियाँ गुप्त थीं इस कारण युद्ध होगया। जैसे इङ्गलैण्ड में ग्रे थे, वैसे ही आस्ट्रिया में काउन्ट बर्चटोल्ड थे जिन्होंने किङ्ग जोज़फ समान शान्तिप्रिय और युद्ध के विरोधी से केवल झूठ के सहारे युद्ध की घोषणा पर हस्ताक्षर करा लिया। यही दशा रूस में मि० सेज़नाफ और उनके साथियों की थी। ज़ार ने सैन्य-संग्रह को स्थगित करने का हुक्म भी दिया किन्तु उनकी चली नहीं। फ्रान्स आरंभ से अब तक युद्ध के लिए तैयार है, क्योंकि प्रजा-तंत्र वास्तव में पूजीतंत्र है, क्योंकि राष्ट्र में साम्राज्य के वास्तविक रियाया के प्रतिनिधि नहीं। सन्धि १९१७ में ही होगई होती किन्तु फ्रान्स के कारण न हो सकी। सन्धि होने के बाद भी फ्रान्स आस्ट्रिया हंगरी और रूस में अब तक यही कोशिश कर रहा

है कि वहाँ राजतंत्र स्थापित हो या कम से कम शासन ज़ार-शाही के पालकों के हाथ में हो जाय। क्यों? क्योंकि पूंजी वालों को अपने रुपयों की फिक्र है। अन्त में तुर्क सुलतान को कुस्तुन्तुनिया में बनें रहने देने का जो निश्चय हुआ उसका भी एक मात्र कारण यही है कि फ्रान्स और इङ्गलैंड का रुपया जो टर्की में लगा है, तुर्कों को यूरोप से बाहर करने में डूब जाता। बोलशविकों को जो चैन नहीं लेने दिया जा रहा है उसका भी एकमात्र कारण यही है कि ज़ारशाही के समय में जो रुपया क़र्ज़ दिया गया था उसकी अदायगी निश्चित नहीं है। दूसरा कारण यह भी है कि बोलशविक साम्राज्यवादी नहीं, वे किसी की भूमि पर कब्ज़ा नहीं चाहते, वे पूंजीवालों के विरोधी हैं, वे संसार में गरीबों को शिक्षा दे रहे हैं कि वे किसी से कम नहीं और संसार में सुख और स्वतंत्रता से जीवन निर्वाह करने का उनको वही हक़ है जो किसी सम्राट, राजा या अमीर को। युद्ध की शिक्षाएँ अनेक हैं किन्तु समुचित रूप से उनकी ओर अब भी ध्यान नहीं दिया जा रहा है। बेईमानी, स्वार्थ और दूसरों को गुलाम बना कर मौज करने की अभिलाषा अब भी राष्ट्रों में सर्वश्रेष्ठ है। कहने को समता और भाईचारे का पाठ पढ़ा जाता है, दीनों और कमज़ोरों की रक्षा के गीत गाये जाते हैं किन्तु यह सब कोरी बातें हैं। राष्ट्रसंघ की बड़ी धूम थी किन्तु राष्ट्रसङ्घ की भी पोल आरंभ में ही खुल गई। जापान ने यह प्रश्न उठाया था कि सब राष्ट्र और जाति के मनुष्यों को किसी देश में स्वतंत्रतापूर्वक जाकर बसने, रहने और व्यापार आदि करने का समान स्वत्व प्राप्त हो किन्तु सुनवाई नहीं हुई। राष्ट्रपति विलसन के ही देश में जापानियों को, एशिया-वासियों

को निकाल बाहर करने का अन्यायोचित प्रयत्न हो रहा है।

इसका बड़ा शोर था कि राष्ट्रों का लड़ाई का सामान कम किया जाय किन्तु हो रहा है सर्वथा इसके विपरीत। अमरीका, इङ्गलैंड, जापान सभी अपनी अपनी तैयारी में ज़ोरो से लगे हुए हैं। संसार में अन्याय और स्वार्थ का बाज़ार गर्म है। अब भी "जिसकी लाठी उसकी भैंस" का सिद्धान्त सर्वमान्य है और यह सिद्धान्त तब तक सर्वमान्य रहेगा जब तक मनुष्यों की प्रकृति और वर्तमान सभ्यता में भीषण परिवर्तन नहीं होता।

युद्ध स्थगित हो गया है

सन्धि परिषद् में सच पूछा जाय तो सन्धि का मसौदा नहीं तैयार हुआ है। जो मसौदा तैयार हुआ है वह केवल कुछ समय के लिए युद्ध को स्थगित करता है। बिना खून उबले हुए, क्रोध रहित होकर सन्धि की शर्तों की चर्चा करना बहुत कठिन है। सन्धि-पत्र की चर्चा सन्धि शब्द की हँसी उड़ाना है। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं सन्धि स्थापित नहीं हुई है, कुछ समय के लिए लैटिन और जर्मन जाति में जो युद्ध सैकड़ों वर्षों से चला आ रहा है स्थगित मात्र हो गया है। सैकड़ों वर्षों से, शताब्दियों से, इन जातियों में झगड़ा इस बात पर चला आ रहा है "यह स्थान हमारा है, यह वस्तु हमारी है, सौरमंडल में वह उच्च-स्थान मेरा है"। फर्क लड़ने वालों के नाम का सिर्फ है। कभी रङ्ग-मंच पर फ्रेडरिक दि ग्रेट रहे, कभी लुई चौदहवाँ, कभी नेपोलियन, कभी बिस्मार्क, नेपोलियन तीसरा; या विलियम दूसरा। पुराने समय में नाम यह थे, वर्तमान समय में इन्हीं लड़ने वालों के नाम क्लिमैन्सो, कैसर, मोल्टके, हिन्डिनबर्ग, पिचन, मार्शल फाक आदि थे। क्षणिक काल के लिए फ्रान्स की

विजय हुई है, फ्रान्स सगर्व कह रहा है हम विजयी हैं और अन्यायपूर्ण सन्धि की शर्तें उसने वैरी से मनवाली हैं । यह सन्धि वैसी ही है जैसी बर्लिन में १८७६ में और पेरिस में १८७१ में लिखी जा चुकी है । कोई ६ करोड़ की जनता वाली ज़ाति ऐसी सन्धि की शर्तों के सामने सदा सर नमाये नहीं रह सकती । जर्मनों ने संन्धि पत्र पर हस्ताक्षर कर दिया है ठीक उसी तरह से जैसे उनके पूर्वजों ने जेना (Jena) और फ्रान्सीसियों के पुरखों ने सिदान (Sedan) के फैसले पर हस्ताक्षर किया था । इस प्रकार से यह निश्चित है कि कुछ ही समय बाद फिर संसार में महाभारत होगा और जर्मन सौरमंडल में फिर अपने खोये हुए स्थान को प्राप्त करने के लिए दृढ़ प्रयत्न करेंगे । हम इस सत्य से अपनी आँखे नहीं फेर सकते कि जो वस्तु या स्थान तलवार की शक्ति से कब्ज़े में लिया गया है, तलवार ही के ज़ोर से कब्ज़े में रखा जा सकता है । जिस प्रकार यह सत्य है उसी तरह से इसका उलटा यह भी सत्य है कि जो तलवार से लिया गया है वह तलवार ही द्वारा छीना जायगा ।

इङ्गलैण्ड, अमरीका और जापान।

इन राष्ट्रों में शीघ्रही एक न एक दिन युद्ध होना निश्चित है। इङ्गलैंड का दोष नहीं, इङ्गलैंड के स्थान पर हम होते तो हम भी कदाचित यही करते। इङ्गलैंड राष्ट्रों की दौड़ में प्रबल प्रतिस्पर्धी नहीं देख सकता। इस समय अगर संसार में इङ्गलैंड से कोई लोहा लेने का साहस कर सकता है तो वह अमरीका या जापान हो सकता है। इङ्गलैंड कभी इन राष्ट्रों को प्रबल न होने देगा। वह अमरीका जापान को लड़ा कर किसी एक का सहायक बन दूसरे को नष्ट भ्रष्ट कर देगा या वह स्वयम् किसी से युद्ध मोल लेकर दोनों राष्ट्रों में से एक को अपने पक्ष में कर दूसरे को नष्ट कर देगा ऐसी संभावना है। अमरीका और इङ्गलैंड में मनमोटाव काफी बढ़ रहा है साथही अमरीका और जापान में भी वैमनस्य कुछ कम नहीं। इङ्गलैंड ने जिन चाल से नेपोलियन और कैसर को पद-भ्रष्ट किया है उन्हीं चालों को वह अमरीका और जापान के साथ चलेगा इङ्गलैंड का इतिहास इस बात को पुकार पुकार कर कह रहा है।

इङ्गलैंड और अमरीका में arbiteration treaty पंचायत कर मामला तय करने की सन्धि जो स्थापित हुई है उससे यह प्रकट है कि दाल में कुछ काला है। साथही इङ्गलैंड और जापान की सन्धि को पुनः स्थापित करने के समय इङ्गलैंड, अमरीका और जापान में जो विचार धारा प्रवाहित हुई थी वह भी अर्थ से खाली न थी। इङ्गलैंड और अमरीका में मन-मोटाव है, जापान और अमरीका में वैमनस्य है। जापान से यह भी छिपा नहीं कि पश्चिमीय राष्ट्र अपने को ईश्वर का सगा समझते हैं और पूर्वीय देशों और निवासियों को हीन दृष्टि से देखना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं।

महाभारत करा देने के लिए यह सब काफी है। जर्मन सौरमंडल में अपने खोये हुए स्थान को प्राप्त करने का प्रयत्न करें तो भी और न करें तो भी संसार के महाभारत देखना अभी बदा है। इन बातों के साथ ही साथ हम लोगों को यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि जापान की इस समय दशा वही है जो सात वर्ष पहिले जर्मनी की थी, उसके लिए आगे बढ़ना, लड़ना या मरना अनिवार्य रूप से आवश्यक है। उसके लिए अपनी चन्द्रमा की कला की भांति नित प्रति बढ़ती हुई जनता के निवास स्थान और भोजन का प्रबन्ध करना ज़रूरी है।

एशिया की स्वतंत्रता

इस समय संसार के सामने सब से अधिक महत्व का प्रश्न यही है कि "संसार में स्थायी शान्ति कैसे स्थापित हो"। हम यह पहिले दिखला आये है कि इस काल में युद्ध नित प्रति बढ़ती हुई जनता के लिए नूतन बाज़ारों और स्थानों पर कब्ज़ा करने के लिए ठाने जाते हैं। यूरोपीय महाभारत के कारणों पर विचार करने से हमको यह साफ दिखाई देता है कि एशिया खंड की बाज़ारों, स्थानों, पथों और समुद्रों पर कब्ज़ा करने के लिए ही वास्तव में युद्ध लड़ा गया। यदि एशिया महाद्वीप के स्थान स्वतंत्र होते, यदि उन पर कब्ज़ा करना सहज न होता या यदि उन पर कब्ज़ा करना पाप समझा जाता तो संसार को यूरोपीय महाभारत का दृष्य न देखना पड़ता। इस लिए हमारी समझ में संसार में स्थायी शान्ति स्थापित करने का सबसे सहज उपाय एशिया महाद्वीप की स्वतंत्रता की रजिष्टरी कर देना है। इस कारण से संसार को यूरोप और अमरीका से यह स्वीकार कराना होगा कि एशिया महाद्वीप स्वतंत्र है और उसके खंडो पर किसी दूसरे का कब्ज़ा

नहीं स्थापित हो सकता। जिस प्रकार से अमरीका वाले "मुनरो सिद्धान्त" का राग अलापते हैं, जिस तरह से आस्ट्रे-लिया और केनाडा वाले यह पुकारते रहते हैं कि "आस्ट्रे लिया आस्ट्रेलियनों के लिए है" "केनाडा कनेडियनों के लिए है" उसी प्रकार से संसार में यह स्वयं-सिद्ध सिद्धान्त होना चाहिये कि "एशिया एशियावासियों के लिए है"। हम यह साफ साफ और ज़ोरों से कह देना चाहते हैं कि मानव-समाज को एशिया की स्वतंत्रता की बुरी तरह से आवश्यकता है।

युद्ध संसार में तब तक होते रहेंगे जब तक युद्ध करने और विजय प्राप्त करने से लाभ हो सकता है। युद्ध का नाम संसार से मिटा देने के लिए ज़रूरी यह है कि हम लोग युद्ध को "लाभहीन" निस्सार और निरर्थक बना दें। जब तक हमलोग यह नहीं कर सकते युद्ध संसार में होते रहेंगे।

अगर युद्ध करने से पददलित प्रदेशों अफ्रीका, एशिया आदि के स्थानों और निवासियों पर प्रभुत्व न प्राप्त हो युद्ध का नाम कोई न लेगा। अगर एशिया और अफ्रीका आज प्रबल हो जायँ और इनसे युद्ध करना केवल शिकार खेलने के तुल्य न दिखाई दे युद्ध होना असंभव हो जायगा। इसलिए इन प्रदेशों का शस्त्रसज्जित, सबल और स्वतंत्र होना स्थायी शान्ति के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

असंभव नहीं कि इन प्रदेशों के प्रबल होने पर जो आज यूरोप और अमरीका वाले कर रहे हैं वही एशिया और अफ्रीकावाले करने लगें। सम्भव है संसार का चक्का घूम जाय, जिस स्थान पर आज यूरोप और अमरीका है वहाँ एशिया और अफ्रीका हों और एशिया और अफ्रीका के स्थान

पर यूरोप और अमरीका दिखाई देने लगें। ऐसी अवस्था में युद्ध जारी रहेंगे इसलिए स्थायी शान्ति के लिए अच्छा यह होगा कि संसार के समस्त राष्ट्रों और जातियों का अर्थात् मानव समाज का एक संघ हो और उसका मुख्य नियम यह हो कि ईश्वर ने समस्त जातियों और मनुष्यों को स्वतंत्रता और स्वराज्य का एक समान स्वत्व दिया है, कोई किसी दूसरी जाति पर राज्य न करे और अगर कोई ऐसा करने का साहस करेगा तो अन्य सब मिल कर उसका दिमाग दुरुस्त कर देंगे ।

राष्ट्र संघ का उद्देश्य यही होना चाहिये था किन्तु वह विजयी राष्ट्रों का खिलौना विजय को स्थायी करने की चिन्ता में उद्देश्य-भ्रष्ट होगया ।

संसार की भलाई के मसले, "राष्ट्र-संघ" का खिलौना नहीं तय कर सकता । हमने अब तक राष्ट्र-संघ की चर्चा नहीं की और इस समय भी हम इतना ही कह कर उसकी चर्चा समाप्त कर देना चाहते हैं कि उसके संबन्ध में एक उर्दू कवि का यह शेर

"बहुत शोर सुनते थे पहलू में दिल का,
जो चीरा तो एक कतरये खूँ न निकला" ।

पूर्ण रूप से चरितार्थ होता है । सच तो यह है कि संघ राष्ट्रों का नहीं वरन् लुटेरों का संघ था । उसका जन्म हुआ था संसार को नूतन साँचे में ढालने के लिए, उसका उद्देश्य था "संसार का पुनर्सङ्गठन" किन्तु सच पूछा जाय तो लूट खसोट और धूर्तता के सिवा उसने कुछ किया ही नहीं । "सन्धि परिषद्" में एशिया को कोई वास्तविक स्थान नहीं मिला । एशिया के पुनर्संगठन का प्रश्न, जो संसार के लिए वैसे ही

अनिवार्य रूप से आवश्यक है जैसे जल और वायु, सन्धि परिषद् में उठाया ही नहीं गया। संसार में स्थायी शान्ति स्थापित करने का ढोंग रचने वालों को यह न दिखाई दिया कि एशिया के अस्वतंत्र, परपददलित और परमुखापेक्षी रहते हुए संसार में शान्ति कैसे स्थापित हो सकती है। संभव है ईश्वरीय प्रेरणा से ही बड़े बड़े राजनीतिज्ञों को इतनी छोटी सी बात न दिखाई दी हो क्योंकि हमारा यह विश्वास है कि एशिया में पूर्ण रूप से स्वतंत्रता स्थापित होने के लिए यह बहुत ज़रूरी है कि संसार में यूरोपीय महाभारत के समान अनेक महाभारत हों। इन महाभारतों की अग्निज्वाला में तपाया जाकर ही एशिया चमकने लगेगा।

महाभारतों की कृपा से एशिया स्वतंत्र होगा साथ ही उसमें वह शक्ति भी पैदा हो जायगी जिससे अपनी स्वतंत्रता और मर्यादा की वह रक्षा कर सके। चाहे जिस दृष्टि से देखा जाय स्थायी शान्ति संसार में स्थापित हो इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह सर्वप्रथम आवश्यक है कि विदेशियों से एशियाखंड मुक्त हो जाय। सब से महत्वशाली और गंभीर प्रश्न संसार के सामने सच देखा जाय तो यही है कि एशिया में यूरोप और अमरीका वालों की सेना, नौ-सेना और हवाई जहाज आदि न रहें। पश्चिमीय प्रदेश वासियों का पूर्वीय देशों से प्रभु की हैसियत से निकल बाहर होना या निकाल बाहर किया जाना संसार में स्थायी शान्ति के भवन की नीव का पहिला पत्थल है। एशिया के खंडों के प्रभु वहाँ के निवासी हों यह ज़रूरी है, इससे वर्तमान समय में कोई हानि न होगी कि शासनक्रम उनका राजतंत्र, प्रजातंत्र, एकाधिपत्य या निरंकुश है।

संसार में जो शान्ति स्थापित करना चाहते हैं उनका यह धर्म है, प्रथम कर्तव्य है, कि वे इस उद्योग में लीन हों कि एशिया का ज़र्रा ज़र्रा अपनी आज़ादी के गीत गाये । यूरोप, अमरीका तथा पश्चिमीय संसार वाले यदि यह नहीं करते तो एशिया वासियों का यह कर्तव्य होगा कि संसार में वास्तविक शान्ति स्थापित करने के हेतु वे स्वयम् इस उद्योग में अपने कंधे लगा दें । यूरोप और अमरीका वाले देखें या न देखें, वे समझें या समझ कर भी नासमझ बने रहें किन्तु यह एक विकट सत्य है कि एशिया वासियों की अन्याय सहन की शक्ति जवाब दे चुकी है और वे अब अन्याय और अत्याचारों को एक मिनट भी सहने के लिए तैयार नहीं । इसके साथ ही इस लज्जा के कारण भी वे ज़मीन में गड़े जा रहे हैं कि उनकी ही कमज़ोरी के कारण, उनको ही गुलाम बना कर रखने के लिए मानव समाज में जब देखिये खून की नदियाँ बह जाया करती हैं । एशिया निवासी अब इस अन्याय, अपमान और लज्जा को सहन करने के लिए तैयार नहीं ।

यूरोपवासियों को मालूम न होगा किन्तु ऐशिया-निवासी बहुत दिनों से यह गान गा रहे हैं :—

"जो हँस रहा है वो हँस चुकेगा ।
जो रो रहा है वो रो चुकेगा ॥
सुकून दिल से खोदा खोदा कर ।
जो हो रहा है वो हो चुकेगा ॥
हमारी मंज़िल का है वो दुश्मन ।
हमारी राहें बिगाड़ता है ॥

खिलेंगे कुछ कुदरती शिगूफे।
जब अपने काँटे वो बो चुकेगा॥
फलक़ चले ज़ालिमाना चालें।
मचाये अन्धेर जितना चाहे॥
ज़माना लेहीगा कोई करवट।
नसीब बेकस का सो चुकेगा॥

(अकबर)

एक तरफ यह है दूसरी ओर पश्चिमीय मित्रों की दयामय देख रेख से भी उनका दिल पक गया है। उन लोगों ने सबको अच्छी तरह से देख लिया है। औरों का कहना ही क्या फ्रान्स ने, जो समता, भ्रातृत्व और स्वतंत्रता की भूमि समझा जाता है, "इन्डो चाइना" को जिस बेइमानी, निर्दयता और कठोरता से लूटा है उसका दुःखद चित्र उनकी आँखों के सामने हरदम नाचा करता है। फ्रान्स ने क्रूर शासन में जावा और "ईस्ट इंडीज़" के लुटेरों डच लोगों को भी मात कर दिया। चीन के साथ पश्चिमीय संसार वालों ने १८४२ से आज तक जो व्यवहार किया है उससे नव-चीन सब पश्चिमीय संसार वालों को अपना घोर शत्रु समझ रहा है। फारस के साथ रूस और इङ्गलैंड ने ही क्या नहीं किया? तुर्कों के साथ यूनानियों, इटैलियनों और अन्य सबों ने क्या उठा रखा? बेलजियम से छोटे से राष्ट्र ने भी फारस में चुंगी के नाम पर ही फरासीसियों के नाकोदम कर दिया। टर्की ने एक के बाद दूसरे समस्त पश्चिमीय राष्ट्रों से मित्रता और सन्धि स्थापित की, सबों को उसने मित्रता की कसौटी पर कसा और उसका अनुभव बहुत ही दुखदाई है। ईसाई संसार से ही उसका दिल खट्टा हो गया है।

अमरीका जापानियों के साथ क्या कर रहा है ? अपने घर में वह एशिया निवासियों को नहीं चाहता, बात बात में वह "मुनरो सिद्धान्त" की दोहाई देता है किन्तु एशिया में हवाई और फिलीपाइन द्वीपों के सहारे वह अपना पैर जमाता जा रहा है। यह असंभव नहीं कि जापान जिस लिए रूस से लड़ा था उसी लिए उसे अमरीका से भी युद्ध ठानना पड़े।

यह सब तो था ही "सन्धि-परिषद्" में पश्चिमीय राष्ट्रों ने जिस प्रकार न्याय बाँटा है उससे भी एशिया निवासी यह भले प्रकार समझ गये हैं कि यदि अपनी किस्मतों का फैसला वे अपने हाथों में नहीं लेते तो भविष्य में अपना अस्तित्व खो बैठने के सिवा उनके लिए और कुछ शेष नहीं है।

एशिया निवासी सर उठायेंगे इसलिए संसार की शान्ति के लिए एशिया का स्वतंत्र होना बहुत ज़रूरी है। एशिया के स्वतंत्र और प्रबलशाली होने की आवश्यकता इसलिए भी है कि वह राजनीति में धर्म और उदारता को जगह दे और मानवी सभ्यता के जहाज़ को इन्द्रिय परायणता (materialism) तथा अन्य नाशकारी चट्टानों से टकराने से बचावे।

एशियावासियों का कर्तव्य

नव-यूरोप, नव-अमरीका और नव-रूस के समाज और साम्यवादियों को संभव है इससे दुःख हो, संभव है अपने उद्देश्य की सफलता में उनको सन्देह पैदा होने लगे किन्तु हमको इसके कहने में तनिक भी संकोच नहीं कि एशिया का अभी बहुत दिनों तक सैनिकवाद, मिलीटेरिज़्म या सेनिकता का पुजारी होना प्रधान कर्तव्य है। पश्चिमीय संसार के लिए इसमें सन्देह नहीं शान्ति के स्वप्न देखना, अस्त्र शस्त्रों, सेना और नौ-सेना की कमी के लिए प्रयत्न करना ठीक है किन्तु एशिया या एफ्रिका की पददलित, अस्वतंत्र और कमज़ोर जातियाँ शान्ति के समान निस्सार स्वप्नों पर विश्वास कर अपनी हस्ती को ख़तरे में नहीं डाल सकतीं। यह उनका दोष नहीं, उनकी स्थिति ही उनको "सैनिकता" के पाठ पढ़ने के लिए विवश कर रही है। पिछली शताब्दियों में गोरे भाइयों द्वारा किये गये अन्यायों और अत्याचारों की प्रतिक्रिया का यह स्वाभाविक फल है।

एशिया और यूरोप तथा अमरीका केवल एक बात में एक हो सकते हैं। दोनों का आदर्श एक है और वह मानव-समाज की गुलामी और हीनताओं की वेड़ियों को तोड़ कर

फेंक देना है । इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए उपाय दोनों के लिए भिन्न भिन्न होंगे । यदि एशिया पश्चिमीय राजनीतिज्ञों और साम्राज्यवादियों के भुलावे में आगया तो वह अपने उद्देश्य की सिद्धि कभी नहीं कर सकेगा यह एक निश्चित बात है ।

हम सैनिकता के पुजारी नहीं किन्तु हम इस सत्य से अपनी आँखे नहीं फेर सकते कि राष्ट्र सहज में परोपकार से प्रेरित नहीं हो सकते, अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए दूसरों के साथ अन्याय करना उनके लिए ज़रूरी होता है और ऐसी दशा में कोई राष्ट्र अधीन राष्ट्र को कभी स्वार्थहीन हो कर मुक्त करने को तैयार नहीं हो सकता । इसके साथही अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित रहना और सैनिकता का पाठ हर समय दोहराते रहना केवल इसी लिए ज़रूरी नहीं कि दूसरों से युद्ध ठाना जाय किन्तु वह दूसरों से अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए भी अनिवार्य रूप से आवश्यक है ।

पश्चिमीय संसार के सच्चे हृदयवाले साधु साम्यवादी तथा कूट-नीतिज्ञ भी इस बात को कह सकते हैं कि अब हम लोग सच्चा प्रजातंत्र स्थापित करने के प्रयत्न में लीन हैं, हम राष्ट्रों के शासन की बागडोर श्रमजीवियों और कृषकों के हाथों में सुपुर्द करने का यत्न कर रहे हैं । इन लोगों को अन्य देशों के श्रमजीवियों और कृषकों से सहानुभूति होगी, यह उनके वैरी न होंगे और इस लिए एशिया को सैनिक बनने की ज़रूरत नहीं । हमारा नम्र निवेदन इतना ही है कि अभी श्रमजीवियों और कृषक भाइयों का शासन स्थापित होने में बहुत देर है साथ ही इसका कोई सुबूत हमारे सामने अभी नहीं है कि हम आपकी इस बात को वेदवाक्य ही मानलें कि श्रमजीवी और कृषक हमारे साथ न्याय ही का बर्ताव करेंगे ।

इस समय भी एशिया प्रवासी पश्चिमीय राष्ट्रों से निकाल बाहर किये जा रहे हैं और यह निकाल बाहर करने का घोर प्रयत्न करने वाले हमारे श्रमजीवी भाइयों के संघ ही हैं। हमको इस बात के कहने से दुख होता है किन्तु तथ्य बातों पर पर्दा नहीं डाला जा सकता।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए हमारा कहना यही है कि संसार के हित के लिए कम से कम कुछ समय के लिए एशिया और अफ्रीका का सैनिक का रूप धारण करना अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

संसारकी स्थिति पर एक दृष्टि

इस समय संसार में प्रतिक्रिया और क्रान्ति का दौर-दौरा है। यूरोपीय महाभारत ने संसार में इन्हीं दो शक्तियों को बेतहाशा दौड़ा दिया है। एक ओर मित्र-दल या विजयी राष्ट्र Reactionary न्याय के विरोधी होरहे हैं, वे विशाल, पवित्र, आनन्ददायी और ऊपर उठाने वाले स्वप्नों का देखना बन्द कर फिर अपने संकुचित, दुर्गन्धमय और छिछले मार्गों का अनुसरण कर रहे हैं। "बल-साम्य" का नाम न लेकर वे बल-साम्य का अर्थ नूतन राष्ट्रों को स्थापित कर सिद्ध कर रहे हैं, कब्ज़ा करने का नाम न लेकर वह उसी उद्देश्य की सिद्धि वलीअहद बनकर या "मंडेटरी" शब्द की रचना कर, कर रहे हैं। "स्वभाग्य-निर्णय" का गोरखधंधा भी इसी लिए रचा गया था। जर्मनी, आस्ट्रिया, टर्की के अधिकृत देशों को स्वभाग्य निर्णय के अधिकार की ज़रूरत थी किन्तु मित्र-दल के अधीन देशों के लिए "स्वभाग्य निर्णय" के अधिकार की ज़रूरत नहीं। इन सब बातों का नतीजा यह हुआ है कि संसार में कितने ही नूतन राष्ट्र ज्वालामुखी पहाड़ों की भांति पैदा हो गये हैं और कितने ही शत्रुदल के राष्ट्रों के खंड अन्य राष्ट्रों में मिलाये जाने के कारण विस्फोटक पदार्थों का काम देंगे। इन सब

बातों के साथ ही साथ यूरोपीय महाभारत से सब से बड़ी हानि जो हुई है वह यह है कि संसार का प्रधान एकाधिपत्य एक राष्ट्र अर्थात इङ्गलैण्ड के हाथों में आगया है। किसी एक राष्ट्र का इतना बली हो जाना संसार के लिए कभी हितकर नहीं हो सकता। संसार साम्राज्य के स्थापित करने में अब इङ्गलैंड का कोई प्रतिरोधी नहीं। रूस दूसरे रास्ते पर है, फ्रान्स निर्जीव है, जर्मनी कुछ समय के लिए कमज़ोर है, आस्ट्रिया हंगरी कभी सर उठा सकेगा इसमें भी सन्देह है, इटली इङ्गलैण्ड के मार्ग में अड़चने नहीं डाल सकता। अमरीका इङ्गलैण्ड की कूटनीति के जाल से सुलझ कर दूर तक देखही नहीं सकता, रहा जापान सो अभी इस योग्य नहीं कि इतने प्रबलशाली राष्ट्र के रास्ते में कंटक का रूप धारण कर सके।

एक ओर दशा यह है दूसरी ओर रूस और समस्त एशिया में क्रान्ति का समुद्र अपनी टक्करें मार रहा है। रूस की क्रान्ति, बोलशविक शासन की स्थापना तथा अधिकृत देशों को मुक्त करने की बोलशविक उदार नीति ने पिछले एशिया महाद्वीप के स्थान पर एक नूतन एशिया की प्राण-प्रतिष्ठा कर दी है।

ज़ारशाही रूस की कमर टूट गई और उसी तारीख से एशिया के सर का बोझ कुछ कुछ हलका हो गया है। वह अब अपनी माँग की आवाज़ को बलन्द कर रहा है। वह साफ साफ यद्यपि धीमी आवाज़ में कह रहा है कि यूरोप और अमरीकावालों को एशिया महाद्वीप में वे ही और उतने ही स्वत्व प्राप्त होने चाहियें जितने एशियावासियों को यूरोप और अमरीका में प्राप्त हैं। एक ओर यह हो रहा है दूसरी

ओर बोलशविकों ने गुप्त सन्धियों और अधीन देशों को मुक्त कर, नूतन राष्ट्रों में सोवियट शासन स्थापित कर और यह घोषित कर कि संसार के समस्त अधीन राष्ट्र स्वतंत्र हैं राजनीति और पर राष्ट्रों के संबन्ध में एक नई ही मोहनी कला पैदा कर दी है। राजनीति में ईमानदारी और परोपकार को स्थान देकर उन लोगों ने कितने ही निराशापूर्ण हृदयों में आशा का दीप जला दिया है। भविष्य में होगा क्या यह कौन कह सकता है हम इतना ही जानते हैं कि "एशिया एशिया वासियों के लिए है" इस सिद्धान्तवालों की कठिनाइयों के काले बादलों की तह में रुपहली रेखा का आविर्भाव हो गया है।

"प्रस्तावना" समाप्त होगई किन्तु उसकी समाप्ति तब तक असम्भव है जब तक उसके सम्बन्ध की दो एक बातें न कह दी जायँ। सब से पहिले हम यह कह देना चाहते हैं कि "लेखमाला" कभी न प्रकाशित हो सकती यदि सम्मानित देशभक्त अमरीका-प्रवासी लाला लाजपतराय जी की हम पर विशेष कृपा न होती। युद्ध-काल में लाला जी की कृपा से हमको यूरोप और अमरीका के कितने ही समाचार पत्र मिला करते थे। कितने ही अन्य भारत प्रवासी भाई अन्य विदेशों से प्रेमवश हमको संसार की जानने योग्य तथ्य बातों की सूचना दिया करते थे। उन समाचार पत्रों और तथ्य बातों के आधार पर ही इस पुस्तक की रचना की गई है।

संसार के अन्तर्गत "भारत" भी है फिर भी "भारत" सम्बन्धी कोई विशेष चर्चा हमने नहीं की, इसका कारण यही है कि आरम्भ से ही हमने यह निश्चय कर लिया था कि भारत सम्बन्धी कोई बात पुस्तक में न होगी।

अन्त में अपने पाठकों से हम इतनी लम्बी प्रस्तावना के लिए क्षमाँ माँग लेना चाहते हैं। हाथी से उसकी दुम बड़ी हो गई किन्तु इसके सिवाय हमारे पास अन्य कोई सहज उपाय न था। "संसार संकट" मूल भाग में प्रस्तावना की कितनी ही बातों का समावेश होना चाहिये था किन्तु यह जैसा कि हम पहिले लिख चुके हैं असंभव सा हो गया था क्योंकि घटनाओं का क्रम मस्तिष्क में नहीं रहा और ऐसी दशा में "लेखमाला" के विस्तार से पूर्वलिखित लेखों का भी मूल्य कम हो जाता।

१४ जनवरी १९२१ } कृष्णाकान्त मालवीय।

प्रथम परिच्छेद।

'संसार-संकट' शीर्षक लेखमाला, प्रायः ६ वर्ष हुए, 'अभ्युदय' में प्रकाशित हुई थी, उस समय संसार में शांति विराज रही थी। उस लेख-माला में यह सिद्ध किया गया था कि संसार में शीघ्र ही युद्ध होगा और संसार की वर्तमान सभ्यता का कायापलट होगा। इसमें यह भी दिखलाया गया था कि यूरोपीय सभ्यता इन्द्रिय परायणता में लीन है, वह ईश्वर और आध्यात्मिक भावों से तेज़ी के साथ दूर भागी जा रही है। स्वार्थ की सिद्धि ही उसका एकमात्र लक्ष्य है। इस सभ्यता का नाश होगा और संसार नूतन साँचे में ढाला जायगा। कुछ ही समय बाद युद्ध आरम्भ हुआ, संसार में भीषण संसार-संकट उपस्थित हुआ। युद्ध आरम्भ होने पर 'अभ्युदय' में एक लेख "युद्ध नहीं शान्ति" प्रकाशित हुआ था। उसमें यह सिद्ध किया

गया था कि युद्ध से अनेक सुफल फलेंगे और यह युद्ध शान्ति का प्रवर्त्तक होगा। अस्तु, युद्ध हो गया और यह भी दिखाई दे रहा है कि वह शान्ति का प्रवर्त्तक होने का प्रयत्न कर रहा है। संसार में शान्ति स्थापित करने के लिए और स्थायी शान्ति के लिए बड़े बड़े आयोजन हो रहे हैं। मित्र और शत्रु सभी राष्ट्र इस प्रयत्न में लीन हैं कि संसार से युद्ध का नामोनिशान मिट जाय और भविष्य में युद्ध का त्रास संसार को त्रस्त न करे। यह आयोजन महत्वपूर्ण और शुभ फल का देनेवाला है किन्तु इसकी सफलता में हमको बहुत कुछ सन्देह है। वर्तमान यूरोपीय राजनीति को उलट पलट कर देखने से यह भासित होता है कि इस शान्ति के आयोजन के नीचे युद्ध के अग्नि-स्फुलिङ्ग अभी राख के ढेर में पड़े हुए भी लाल हैं और गरम हैं। यूरोपीय संसार युद्ध के अन्त न होने तक एक रूप में था, किन्तु युद्ध के अन्त के निकट के साथ ही साथ धीरे धीरे किन्तु छिपे छिपे, आंखों की ओट वह फिर वही पुराना रूप—अवश्य ही कुछ नूतन वेषभूषा में—धारण कर रहा है। फिर Imperialism साम्राज्यवाद और "अहमस्मि" का भाव ज़ोर पकड़ रहा है।

सम्भव है हम भ्रम में पड़े हों किन्तु इस समय हमको यही दिखलाई दे रहा है कि प्रेसीडेण्ट विलसन अब वही नहीं हैं जो वह युद्ध के पहिले थे। यूरोपीय संसार में भी एक भीषण परिवर्तन उपस्थित हो गया है। पहिले यह सुनते थे कि छोटी जातियां और राष्ट्र सब को स्वतंत्रता प्राप्त होगी, सब को एक समान स्वभाग्य-निर्णय का स्वत्व प्राप्त होगा, सब अपनी योग्यता, इच्छा और शक्ति के अनुसार अपना भविष्य निर्धारित कर सकेंगे, किन्तु अब यह होगा या होने पावेगा, इसमें

हमको बहुत कुछ सन्देह है। यूरोप और अमरीका में जहां एक ओर बांलशविज़्म—निपट साम्यवाद—किसानों और श्रम-जीवियों के शासन—का ज़ोर है, वहीं दूसरी ओर संगठित और विजय के मद में चूर राष्ट्रों में Imperialism साम्राज्य-वाद का दौरदौरा है। अमरीका में भी रिपब्लिकन दल ज़ोर पकड़ रहा है और सेनेट में असंभव नहीं कि रा० विलसन की बातों का घोर विरोध हो। यह निश्चित सा दिखाई देता है कि एक दो मास में अमरीकन सेनेट में मि० टैफ्ट के दल का उनके ही समान कोई दूसरा मनुष्य अधिक बलवान हो जायगा। इस दल की नीति Knock out blow

"सर तोड़ दो"

होगी। इसके सिवाय प्रेसीडेण्ट विलसन, जहां तक प्रतीत होता है, "समुद्रों की स्वतंत्रता," राष्ट्र-संघ, स्वभाग्य-निर्णय के सिद्धान्तों की परिभाषा भी अब ठीक ठीक न कर सकेंगे। यूरोप की यात्रा के समय अमरीका के सेनेट में बोलते हुए राष्ट्रपति ने कहा था—"to conquer with arms is to make only a temporary conquest, to conquer the world by earning its esteem is to make a permanent conquest" "तलवार की शक्ति से अस्थायी विजय प्राप्त हो सकती है। संसार पर स्थायी विजय उसका आदर प्राप्त करने ही से हो सकती है।" बेलजियम और फ्रान्स के निवासी उदारता के समुद्र में कहां तक डूबे हैं, इसका पता अब राष्ट्रपति को मिल गया होगा। इसके सिवाय अमरीका की अब वह शक्ति भी नहीं रही है, न वह संसार में इस समय उसी उच्च स्थान पर, जिस स्थान पर कुछ समय पहिले वह था, बैठा हुआ है।

इङ्गलैंड फिर अपना पुराना स्थान ग्रहण कर रहा है, कुछ ही समय में वह संसार का बैंक, संसार का व्यापारी और हुंडी मोल लेनेवाला महाजन हो जायगा। इसके साथ ही साथ हम लोगों को यह भी न भूलना चाहिये कि अमरीका की जापान-सम्बन्धी चिन्ता केवल इङ्गलैंड के साथ रहने और उसे प्रसन्न रखने से दूर रह सकती है। अमरीका इसे समझता हो या नहीं, किन्तु इङ्गलैंड इसे अच्छी तरह समझता है। ऐसी अवस्था में यदि प्रेसीडेन्ट विलसन रङ्ग बदलें या इङ्गलैंड की हाँ में हाँ मिलाते रहें तो कोई आश्चर्य नहीं। युद्ध के अन्त के पहिले स्वयम् राष्ट्रपति और सारा संसार इस बात की घोषणा कर रहा था कि युद्ध का अर्थ साम्राज्य-विस्तार या राष्ट्रों और मुल्कों पर क़ब्ज़ा करना नहीं है। राष्ट्रपति ने स्वयम् इस बात को ज़ोरों से कहा था कि किसी राष्ट्र को

क्षतिपूर्ति की रक़म

न देनी होगी। अब ये बातें हवा हो गई हैं। सन्धि-परिषद् के सामने सब से पहिले यही मसले उपस्थित हैं। आलसेस-लोरेन तो फ्रांस को मिलेगा ही, साथ ही दक्षिण अफ्रिका-स्थित जर्मन उपनिवेशों का भी कुछ भाग लेने को उसकी लार टपक रही है। मोराको-सम्बन्धी भी उसके कुछ विशेष विचार हैं। इटली भूमध्य-सागर में कुछ अधिकार चाहता है, साथ ही बालकन प्रायद्वीप के कुछ कोयले की खानों के लिए भी वह लालायित है क्योंकि इटली के पास कोयले की खानों के सिवाय सब कुछ है। स्पेन जिब्राल्टर बन्दर चाहता है, जो इङ्गलैंड का एक

प्रधान और भूमध्य-सागर का मुख्य बन्दर है। इङ्गलैण्ड के लिए स्पेन, बन्दर के दूसरे तट पर कुछ प्रबन्ध कर देने को तैयार है। संभव है इङ्गलैंड राज़ी हो जाय, किन्तु शर्त यह होगी कि मिश्र उसके अधीन रहे, उसका वही पूर्ण रूप से इङ्गलैंड माना जाय और इस सम्बन्ध में कोई राष्ट्र चूं न करे। Cuba क्यूबा, और अनेक अन्य छोटे छोटे द्वीप और रुपया भी स्पेन इङ्गलैंड को देने के लिएको तैयार है। इटली ट्रिपली में भी अपना प्रभाव-क्षेत्र बढ़ाना चाहता है। जापान चाहता है कि सब राष्ट्र उसको साइबीरिया में शान्ति-स्थापन का इस्तमरारी पट्टा लिख दें। इसके साथ ही साथ जापान यह भी चाहता है कि सब राष्ट्र इस बात को मान लें कि चीन जापान का आर्थिक, औद्योगिक और व्यापारिक क्षेत्र है, और जापान कियाचौ का सदा के लिए अधिकारी है। जापान की इच्छा यह भी है कि मारशल और केरोलाइन द्वीप का वह अधिकारी बना दिया जाय। सारांश यह कि साम्राज्य-विस्तार के साथ ही साथ इङ्गलैंड का मिश्र का, फ्रांस का मोराको का, जापान का चीन और साइबीरिया का और इटली का ट्रिपली का अधिकार सदा के लिए सन्धि-परिषद् में स्वीकार कर लिया जाय। मित्र राष्ट्र यह भी चाहते हैं कि जर्मनी के दक्षिण अफ्रिका के उपनिवेश छीन लिये जायँ, किन्तु काङ्गो, जहां कि बेलजियम ने कोई अत्याचार उठा नहीं रक्खा, बेलजियम का ही बना रहे। टर्की का साम्राज्य टुकड़ों में विभक्त हो जाय, यहूदी स्वतंत्र हो जाँय, आर्मीनीयन स्वतंत्र हो जाँय, किन्तु जापान के गाल से कोरिया न निकाला जाय और इटली तथा फ्रांस की ट्रिपली और मोराको की अरब प्रजा स्वतंत्र न हो। कहा जाता था कि साम्राज्य-विस्तार

युद्ध का अर्थ नहीं है, किन्तु उपर्युक्त बातें छोटी जातियों को स्वतंत्रता प्रदान करने की मानी जाती हैं। सुनते थे क्षति-पूर्ति की रक़म न ली जायगी, किन्तु बलगेरिया तथा जर्मनी से बहुत बड़ी रक़म लेने की चर्चा सुनाई दे रही है। इङ्गलैंड में गंगा-यमुनी मंत्रिमंडल ने इसी क्षतिपूर्ति की रक़म लेने और क़ैसर को सज़ा देने के तुरुप के ताश के बल से चुनाव की बाज़ी जीती है। आप लोगों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि उदार दल के नेता भूतपूर्व प्रधान सचिव मि० एस्क्विथ पार्लामेंट के सदस्य नहीं चुने गये, मज़दूर-दल के नेता मि० हेन्डरसन, मि० लैन्सबरी मि० रामज़े मेकडानल्ड हार गये और मि० स्नोड्न की पूछ नहीं हुई। ऐसे ऐसे प्रधान दलों के नेताओं की हार तथा उपर्युक्त बातें संसार को कुछ चेतावनी दे रही हैं। ये साफ़ साफ़ कह रही हैं कि संसार

नैतिक भावों

को कुचल कर फिर "अहमस्मि" की ओर भागा जा रहा है। युद्ध संसार से Imperialism, Materialism इन्द्रियपरायणता, साम्राज्य-विस्तार की लालच और अहमस्मि को दूर करने के लिए हुआ था, किन्तु यही शक्तियां संसार में फिर प्रधानता प्राप्त कर रही हैं। ऐसी अवस्था में यह असम्भव नहीं कि कुछ दिनों बाद फिर संसार के सुधार की आवश्यकता हो और फिर संसार-संकट उपस्थित हो।

(अभ्युदय ४ जनवरी १९१९)

आगामी महाभारत।

द्वितीय परिच्छेद।

महाभारत होगा, इसमें सन्देह नहीं। एक नहीं, दो नहीं इस शताब्दी में कई बार संसार में भीषण, विकराल महाभारत होने की संभावना है। भारत इन सबों में उत्कृष्ट भाग लेगा। अन्तिम महाभारत कलियुग में सतयुग-स्थापन के निमित्त होगा। निश्चित रूप से भविष्य में क्या होगा, यह ब्रह्मा के सिवाय और कोई नहीं कह सकता, किन्तु संसार में जो कुछ हो रहा है, जो कुछ होता दिखाई दे रहा है, उससे उपर्युक्त बातों की संभावना प्रतीत होती है।

आगामी महाभारत

की नींव अभी से पड़ना शुरू हो गई है। अभी इस महाभारत का रक्त भी रणक्षेत्रों में नहीं सूख पाया है और तैयारियां ऐसी होने लगी हैं, घटनाएँ ऐसी घटित हो रही हैं, राजनीतिज्ञों का दिमाग़ ऐसा फिर गया है कि यह साफ़ साफ़ दिखाई देता है कि दूसरे महाभारत का बीज बोया जा रहा है।

उसका शीघ्र फलना फूलना आबहवा और ज़मीन पर अर्थात् राष्ट्रों की स्थिति और उनमें रहनेवाली प्रजा के शीघ्र शक्तिमान् होने की प्रकृति पर निर्भर है। इस बीजवपन की क्रिया को भले प्रकार समझने के लिए यह आवश्यक है कि आप संसार के राष्ट्रों की वर्तमान स्थिति पर एक बार विचार करें। आइये, राष्ट्रों की आप मेरे साथ साथ सैर करिये और देखिये कि कहां क्या हो रहा है। इस समय मेरा इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यूरोप की भावी शान्ति के लिए सन्धि का विजय के नहीं वरन् न्याय के खंभ पर स्थापित होना आवश्यक था, राष्ट्र-संघ का संगठन सन्धि की मुख्य शर्तों के तय होने के पहिले न कि बाद में, उचित था, किन्तु यह सब कुछ हुआ नहीं। सन्धि द्वारा शान्ति की नहीं वरन् विजय की घोषणा ध्वनित हो रही है और राष्ट्र-संघ की चर्चा को एक कोने रख कर फ्रांस के सचिव मि० क्लिमैन्सो पुराने

शिकार के कुत्ते

बल-साम्य के हिमायती होरहे हैं। राष्ट्र-संघ तथा भविष्य की शान्ति की सफलता के लिए सब से प्रथम आवश्यक यह था कि राष्ट्रों का युद्ध का सामान—अस्त्र-शस्त्र, गोला-बारूद सेना और नौ-सेना—दिन प्रतिदिन कम किया जांय, राष्ट्रसंघ में सम्मिलित होनेवाले राष्ट्रों के लिए पहिली और मुख्य शर्तें भी यही हैं कि वह सैनिकों की संख्या कम करें और युद्ध का सामान घटावे, किन्तु अभी ही यह ख़बर आई है कि अमरीका ज़ोरों से अपनी नौ-सेना बढ़ाने में दत्तचित्त है। दो तीन वर्ष के भीतर ही बड़ी शक्तिशालिनी नौ-सेना, अमरीका तैयार कर लेना चाहता है। नौ-सेना कमेटी के सदस्यों को मि०

डैनियल्स ने सूचित किया है कि अमरीकन नौ-सेना के बड़े बड़े जहाज भविष्य में विद्युत-द्वारा चलेंगे। उन्होंने कहा है कि "न्यूमैक्सिको" जो अभी तैयार हुआ है संसार में विद्युत-द्वारा चलनेवाला पहिला और संसार का सर्वोत्तम युद्ध-पोत है। इसमें ३१,००० घोड़ों की शक्ति है और जलमग्न चारों तरफ़ से वार करने पर कठिनाई से इसे नष्ट कर सकेंगे। कानों में यह ख़बर भले प्रकार गूंज भी न पाई थी कि इङ्गलैंड से यह ख़बर सुनाई दी कि "हुड" नाम का युद्ध-पोत शीघ्र ही तैयार हो जायगा। यह ८६४ फ़ुट लम्बा है और अपने वक्षस्थल पर १५ इंचवाली आठ तोपों को धारण करेगा। इसका बहिर्भाग ऐसा बनाया जा रहा है कि जलमग्न इससे व्यर्थ हो मुठभेड़ किया करेंगे। ऐसे ही तीन युद्ध-पोत और तैयार हो रहे हैं। संसार की भावी भलाई के लिए यह तैयारियां हो रही हैं और इस प्रकार से वे राष्ट्र जो शान्ति और सन्धि के चीत्कार से संसार को हिलाये दे रहे हैं, भविष्य के लिए प्रबन्ध कर रहे हैं। कुछ समय के लिए इन बातों से ध्यान हटा कर

ग्रेट-ब्रिटेन को देखिये

इङ्गलैंड में क्या हो रहा है, शान्ति के कौन कौन से सामान वह एकत्रित कर रहा है? इङ्गलैंड से आपका घनिष्ठ सम्बन्ध है और इसकी बातों का, संगठन का, राजनीति का आपको परिचय भी अधिक है और इसलिए अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा पहिले इसी के सम्बन्ध में विचार करना सहज होगा। आप जानते हैं कि मंत्रिमंडल का चुनाव हो गया है। वह कैसा हुआ है यह भी आपसे छिपा नहीं, किन्तु कदाचित् आपको यह मालूम न होगा कि सिवाय मि० लायड जार्ज के इस

समय में चुनाव का होना किसी को पसन्द न था। उदार, अनुदार, मज़दूर, स्वतंत्र सभी दल के मनुष्य इस समय में चुनाव के विरुद्ध थे। किन्तु यह हुआ, क्योंकि मि० लायड जार्ज यह जानते थे कि इसी समय चुनाव होने से उनकी जीत संभव थी। विजय-श्री उनके समय में प्राप्त हुई थी, विजय का श्रेय उनको मिल रहा था, विजय का मद उतरते ही स्वाभाविक जीवन में जनता अधिक विवेक से काम करेगी और उस समय में मि० एस्क्विथ, मि० हैन्डरसन, जार्ज लैन्सबरी आदि का शक्ति न प्राप्त कर लेना असम्भव हो जायगा। चुनाव हो गया, किन्तु सदस्यों का सन्धि-परिषद् पर अधिक प्रभाव न पड़ेगा। सन्धि-परिषद् की प्रारम्भिक बैठक आरम्भ हो गई और कामन्स सभा की बैठक नहीं प्रारम्भ हुई है। मंत्रणाएँ गुप्त गुप्त हो गईं और कूटनीति के बन्द द्वार के पीछे गुपचुप सब तय भी हो गया है।

कूटनीति का बन्द द्वार

संसार की भलाई के लिए अच्छा नहीं, संसार परराष्ट्र-विभाग (फ़ारन आफ़िसेज़) की गुप्त चालों का बहुत दिनों से भीषण विरोधी था। इङ्गलैण्ड में और फ्रान्स में पिछली शताब्दि में ही इस मसले पर विचार होना आरम्भ हो गया था कि परराष्ट्र-विभाग की कोई कार्यवाही गुप्त रीति से न हो, गुप्त सन्धियाँ न की जायँ और परराष्ट्र-विभाग जनता की दृष्टि के पहुंचने के लिए चारों ओर से खुला हो। इङ्गलैण्ड में युद्ध के छिड़ते ही यही पुकार उठी थी। कितने ही लोग युद्ध का कलङ्क सर एडवर्ड ग्रे की कूटनीति और परराष्ट्र-विभाग की विकृत चालों के माथे मढ़ते थे। यह साफ़ साफ़ स्वीकार

कर लिया गया था कि भविष्य में परराष्ट्र-विभाग कोई कार्य-वाही गुप्त रीति से न करेगा और संसार के राजनीतिज्ञों के मत में भविष्य की भलाई के लिए यह नितान्त रूप से आवश्यक भी समझा गया था। रा० विल्सन ने भी कहा था कि गुपचुप बातें न होंगी किन्तु हुआ वही जो नहीं होना चाहिये था।

शान्ति की पहेलिका

सन्धि-परिषद् के आरम्भिक अधिवेशनों में हल हो रही है और कामन्स सभा का इसमें हाथ नहीं। मज़दूर-दल और उदारदल तथा प्रजा के विचारशील मनुष्यों से यह सब छिपा नहीं और यह समझ लेना कि वे सहज में इन बातों को सह लेंगे, "टुक टुक दीदम दम न कशीदम" की कहावत को चरितार्थ करेंगे, उचित नहीं है। वे सह लें या नहीं, किन्तु चुनाव ने ही जो कुछ सिद्ध कर दिया है वही दिल को काफ़ी तरह से हिला देनेवाला है।

आयर्लैण्ड की समस्या

ने विकराल रूप धारण कर लिया है। आयर्लैण्ड में राष्ट्रीय दल का, जो इङ्गलैण्ड के साथ रह कर स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहता था, पता नहीं है। सिनफिन दल की लहरों के सामने वह बह गया और निकट भविष्य में उसके शक्ति-सम्पन्न होने की आशा नहीं। सिनफिन दल के जो सदस्य चुने गये हैं वे पार्लामेन्ट में बैठना नहीं चाहते और डबलिन में एक शासन-सभा स्थापित कर वे आयर्लैंड की स्वतंत्रता की घोषणा करना चाहते हैं। इङ्गलैण्ड के राजनीतिज्ञों और विशेषकर मि० लायड

जार्ज की चालों का फल यह हुआ है। आयलैंएड सब कुछ कर चुका है। नियमानुमोदित आन्दोलन, मारकाट, उपद्रव, बलवा आयलैंएड ने कोई बात उठा नहीं रक्खी, युद्ध के पहिले उसे स्वराज्य का वचन भी दे दिया गया था, किन्तु कोरी बातों के सिवा कुछ किया नहीं गया। पिछले अप्रैल मास में मि० लायड जार्ज ने कहा था कि आयलैंएड में शीघ्र ही, बिना अधिक विलम्ब के, स्वराज्य का संस्थापन होगा। आठ महीने बाद नवम्बर में गंगा-यमुनी मंत्रिमंडल की नीति निर्धारित करते हुए प्रधान सचिव ने कहा कि हम अल्स्टर को विवश नहीं करेंगे और उसे उसकी इच्छा के विरुद्ध कार्य न करना पड़ेगा। आपसे छिपा नहीं कि अल्स्टर विरोधी है, वह नहीं चाहता कि आयलैंएड का स्वराज्य प्राप्त हो। मि० लायड जार्ज से आयलैंएड को तनिक भी आशा नहीं, उसका इङ्गलैएड में भी विश्वास कम हो गया है और सिनफिन दल के सदस्यों को चुनकर—जो शीघ्र ही आयलैंएड की स्वतंत्रता की घोषणा करना चाहते हैं—उसने इसी बात की सूचना दी है। युद्ध के पहिले के आपस के युद्ध Civil war की आशङ्का ने अब नूतन रूप में फिर जन्म ले लिया है। आयलैंएड में सिनफिनों—क्रान्तिकारियों—की विजय हुई है, वे झगड़े से डरते नहीं वरन् उसका आवाहन करते हैं। एक ओर यह है दूसरी ओर ग्रेट-ब्रिटेन भी कभी शान्ति-पूर्वक आयलैंएड में स्वतंत्र

प्रजातंत्र का स्थापन

नहीं देख सकता। वह होमरूल कदाचित् दे भी देता। आयलैंएड में प्रजातंत्र का संगठन इङ्गलैएड के लिए कल्याण-कारी नहीं और वह यथाशक्ति इसे न होने देगा। यह सच है

कि इङ्गलैंड के हाथ में शक्ति है, अभी उसकी सेना ने म्यान में तलवार भी नहीं रक्खी है, किन्तु इसका फल क्या होगा? तीन चौथाई आयर्लैंड प्रजातन्त्रवादी है और वह अस्त्रों से क़ाबू में नहीं रक्खा जा सकता। हमको विश्वास है कि इङ्गलैंड के राजनीतिज्ञ, जो चतुरता और बुद्धिमत्ता में सर्व-श्रेष्ठ सिद्ध हो रहे हैं, अवस्था को समझ कर काम करेंगे और आयर्लैंड को सन्तुष्ट रक्खेंगे, किन्तु वर्तमान स्थिति चिन्ताजनक है, इसमें सन्देह नहीं। इङ्गलैंड सहसा स्वतंत्रता के दान से कदाचित् इसलिए सहमता है क्योंकि उसे आयर्लैंड का विश्वास नहीं, दूसरे स्वतंत्र या प्रजातंत्र आयर्लैंड की बयार इंगलैंड के लिए अच्छी न होगी, तीसरे स्वतंत्र प्रजातंत्र आयर्लैंड, इङ्गलैंड के शत्रुओं के हाथ में सेना तथा नौसेना के आक्रमण की दृष्टि से भी एक विशेष गढ़ हो सकता है, इङ्गलैंड जीते जी दुग्ध के साथ इस मक्खी को नहीं निगल सकता। इसीलिए वह, जहां तक मालूम होता है, सब तरह से उदार होते हुए भी उदारता को कार्यरूप में नहीं परिणत कर पाता है। राष्ट्रपति विलसन, मैं पिछले ही परिच्छेद में कह चुका हूं, पुराने राष्ट्रपति विलसन, नहीं रहे और कम से कम इङ्गलैंड को उसकी इच्छा के विरुद्ध काम करने पर विवश करने की अब उनमें सामर्थ्य नहीं। यह सभी बातें विचारणीय हैं। इन बातों का अर्थ यह नहीं है कि इङ्गलैंड और आयर्लैंड में महाभारत होना चाहता है, अधिक से अधिक यह सम्भव है कि इनका यह प्रभाव हो कि मंत्रिमंडल को इस्तीफ़ा देना पड़े, किन्तु सर सत्येन्द्र को सहकारी भारत-सचिव बनानेवाले से हमको कुछ अधिक आशा है और हमारा विश्वास है कि आयर्लैंड का हृदय वश में करने के

लिए वह कोई बात उठा न रक्खेगा । उपर्युक्त बातों के लिखने से मेरा तात्पर्य यही है कि ग्रेट-ब्रिटेन की वर्तमान स्थिति कैसी है, राष्ट्र के प्रधान अङ्गों में मनमोटाव कैसा बढ़ रहा है और संसार की भावी शान्ति पर इसका प्रभाव कैसा पड़ेगा । आप लोगों को भी इन बातों पर अच्छी तरह विचार करना चाहिये, क्योंकि इङ्गलैंड और भारत के भविष्य का घना सम्बन्ध है ।

(अभ्युदय १८ जनवरी १६१६)

इतिहास अपने को दोहरा रहा है।

तृतीय परिच्छेद

"अगर फ़ुर्सत मिली हो स्वार्थ की बातों को सुनने से।
धरम की बात भी सुन लीजिये सरकार थोड़ी सी॥"

पिछले परिच्छेद में हमने आपसे राष्ट्रों की सैर करने की प्रार्थना की थी, हमने कहा था कि युद्ध का बीज बोया जा रहा है। आइये देखिये, बीज कैसे और कहां वपन हो रहा है। इसके पहिले कि वर्तमान राष्ट्रों की आप देखभाल करें हम यह चाहते हैं कि पुराने इतिहास पर भी आप एक नज़र डाल लें, क्योंकि जैसा कि विद्वानों का मत है, हमको यह दिखाई पड़ रहा है कि यूरोप का इतिहास अपने को दोहरा रहा है। आप इस समय देख रहे हैं कि पेरिस में सन्धि-परिषद् के अधिवेशन हो रहे हैं, राष्ट्र-संघ का निर्माण हो रहा है, राष्ट्र इस प्रयत्न में लीन हैं कि भविष्य में युद्ध रोका जाय और संसार से युद्ध का

नामोनिशान मिट जाय। इतिहास के पृष्ठों को उलट कर देखने से ऐसी घटनाएँ पूर्वकाल में भी हुई दिखाई देती हैं। उस समय में संसार के रंग-मंच पर फ्रांस का दौरदौरा था, उस समय जर्मनी या क़ैसर का पता न था, लोग नेपोलियन और फ्रांस का नाम लेकर सुबह और शाम उठते बैठते थे। यूरोप में फ्रांस का झंडा फहरा रहा था और नेपोलियन के नाम से राजाओं का मुकुट और सिंहासन हिल जाता था। इंगलैंड, जर्मनी, रूस और आस्ट्रिया को पैर रखने को संसार में ठौर नहीं मिलता था। उस समय फ्रांस की दशा वही थी जो जर्मनी की १६००–१४ में थी। जिस तरह इस काल में जर्मन लोगों का यह ख़्याल था कि—"क़ैसर प्रशिया का प्रधान है, प्रशिया जर्मनी का, जर्मनी संसार का शिरोमुख है और इस दुनियां में कोई बात बिना जर्मनी और क़ैसर के हस्तक्षेप के तय नहीं होनी चाहिये, उसी तरह से नेपोलियन के समय में फ्रांस-निवासियों का यह ख़्याल था कि फ्रांस संसार की क़िस्मत का विधाता है। जिस तरह से बढ़ती हुई जर्मन जनता के लिए निवास-स्थान की जर्मनी को चिन्ता थी उसी तरह उस समय फ्रांस को अपनी बढ़ती हुई जनता के लिए उपनिवेशों की आवश्यकता थी। तात्पर्य यह कि फ्रांस यूरोप का शिरोमुख था और नेपोलियन के इशारे से यूरोप के राष्ट्र चलते थे। किन्तु फ्रांस का पतन हुआ। इंगलैंड, जर्मनी, रूस और आस्ट्रिया ने मिलकर फ्रांस को कुचला। घटना इस प्रकार घटित हुई। नेपोलियन संसार का शासक होना चाहता था। यूरोप में जोही सर उठाता उसे वह कुचल देता। इङ्गलैंड राजनीति में सदा से कुशल रहा है। प्रधान सचिव "पिट" ने रूस और आस्ट्रिया को अपनी

ओर मिलाया। नेपोलियन से यह छिपा न रह सका। उसने आस्ट्रिया पर तुरन्त वार किया। आस्ट्रिया की प्रधान सेना को उसने क़ैद कर लिया और शीघ्र ही दिसम्बर १८०५ में उसने रूस और आस्ट्रिया की सम्मिलित सेना को परास्त किया। इससे "पिट" को बहुत व्यथा पहुंची और उनकी मृत्यु हो गई। इसके बाद हालैंड और नेपिल्स के राज्यों पर अधिकार कर नेपोलियन ने जर्मनी पर चढ़ाई कर दी। कुछ ही सप्ताहों में जर्मन सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गई और जर्मनी के प्रायः समस्त प्रधान क़िलों पर फ्रांस का झंडा फहराने लगा। इसके बाद नेपोलियन ने रूसी सेना को सर किया। इङ्गलैंड को धक्का पहुँचाने को नेपोलियन ने बर्लिन Berlin Decrees और मिलन Milan Decrees की विज्ञप्तियों की घोषणा की। इनका अर्थ यह था कि यूरोप के राष्ट्र इंगलैंड से किसी प्रकार का व्यापारिक सम्बन्ध न रक्खें। (कुछ ऐसा ही इस समय मित्रराष्ट्र वाले जर्मनी के व्यापार के सम्बन्ध में करना चाहते हैं) पोर्तुगाल के राष्ट्र ने इन विज्ञप्तियों की अवहेलना की, नेपोलियन ने उसे भी ख़ासी शिक्षा दी और अपने भाई को वहां का राजा बना दिया। नेपोलियन की शक्ति को बढ़ते देख यूरोप के राष्ट्र चौंके और फिर उन में धीरे धीरे सन्धि स्थापित हुई। इङ्गलैण्ड ने फ्रंच सेना से लड़ने के लिए स्पेन पर चढ़ाई की, आस्ट्रिया दक्षिण जर्मनी में फ्रांस पर हमला करने को उठा और अप्रैल, १८०६ से १४ तक युद्ध जारी रहा। एक ओर अंग्रेज़ी फ़ौज वेलिङ्गटन के नेतृत्व में विजय प्राप्त कर रही थी, दूसरी ओर नेपोलियन आस्ट्रिया को कुचल रहा था। इसी समय रूस क्षेत्र में आया। रूस इङ्गलैण्ड से व्यापार जारी रखना चाहता था, यह नेपोलियन को असह्य था उसने

रूस पर चढ़ाई कर दी। सेना चढ़ गई, किन्तु रूस की विस्तृत भूमि के बर्फ़िस्तान में वह करती क्या? भोजन-वसन की सामग्री कहीं नहीं मिली और सेना को विवश हो लौटना पड़ा। नेपोलियन के

पतन का प्रथम चिन्ह

यह था। पहिले ही बार उसकी सेना अपने उद्देश्य में असफल हुई थी। इसी समय में उत्तरीय जर्मनी की फ्रेंच प्रजा ने बग़ावत या स्वराज्य का झंडा उठाया। नेपोलियन को स्पेन से सेना इधर बुलानी पड़ी। वेलिङ्गटन को मौक़ा मिला और उसने फ्रेंच सेना को नीचा दिखाया। इसी समय में जर्मन, आष्ट्रियन और रूसी सेना ने मिलकर आक्रमण किया। नेपोलियन का सितारा नीचा हुआ। लेपज़िग में हार कर नेपोलियन फ्रांस की ओर हटा और मित्रदल की सेना पेरिस् पर चढ़ गई। नेपोलियन सिंहासन से उतारा गया, लुई अठारहवां फ्रांस का राजा बनाया गया और नेपोलियन एलबा द्वीप में निर्वासित किया गया। यूरोप शान्त हुआ और जैसा कि इस समय हो रहा है, राष्ट्र, सेना कम करने का स्वप्न देखने लगे और इस विचार में लीन हुए कि युद्ध भविष्य में बन्द किया जाय। जिस तरह आज दिन वार्सेल्स में उसी तरह उन दिनों

वियना में सन्धि-परिषद्

बैठी थी। फ्रांस के नष्ट भ्रष्ट-होने की लालसा सब के हृदयों में थी किन्तु किसी ने कभी स्वप्न में भी यह नहीं देखा था कि उसका पतन होगा। जैसी आज जर्मनी की दशा है उससे भी गई गुज़री दशा उस समय फ्रांस की थी। आज के समान

जर्मनी के नहीं वरन फ्रान्स के उपनिवेशों को बांटने को, उसके माल से मालामाल होने को, मृत शरीर से रक्त चूसने को और उसकी हड्डियों को बुकनी करने को राष्ट्रों के प्रतिनिधि सितम्बर, १८१४ में वियना में एकत्रित हुए। इङ्गलैण्ड था, जर्मनी था, रूस था, आस्ट्रिया था और छोटे मोटे राष्ट्रों के कितने ही प्रतिनिधि थे। बिलकुल जैसा इस समय हो रहा है वही सामान था। परिषद् का अधिवेशन सितम्बर १४ से जून १५ तक होता रहा। जैसे कि इस समय जर्मनी से सब कुछ छीना जा रहा है उसी तरह से उस समय में फ्रांस से प्रायः सब कुछ छीना गया था। लूट में सीलोन, मारिशस, माल्टा, केपकालोनी, हेलीगोलैण्ड (द० एफ्रिका) इङ्गलैण्ड को मिला, उत्तरीय इटली आस्ट्रिया को, रूस को पोलैण्ड और जर्मनी को सेक्सनी और राइन प्रदेश मिले। यह प्रत्यक्ष माल था। परिषद् का अधिवेशन हो ही रहा था कि एलबाद्वीप से

नेपोलियन निकल भागा,

और फ्रांस में पैर रखते ही वह फिर राजा हो गया। किन्तु यह राज्य केवल सौ दिनों तक चला। मित्रसेना ने चारों ओर से चढ़ाई कर दी और १८१५ में वाटरलू में वेलिङ्गटन ने नहीं, जैसा कि स्कूली पुस्तकों में हम पढ़ते हैं, वरन् जर्मन जनरल ब्लूचर ने नेपोलियन को ज़मीन से मिला दिया। फ्रेंच सेना भाग खड़ी हुई और नेपोलियन पेरिस को भागा। मित्र दल की सेना पेरिस तक चढ़ गई और क़ैसर की भांति नेपोलियन को प्राण बचाकर अपने राज्य से भागना पड़ा। नेपोलियन क़ैद हो गया। जिस तरह आज "कैसर को दंड दो", "फांसी दो,"

"क़ैद करो" का बाज़ार गर्म है उसी तरह से उस समय में हुआ और नेपोलियन सेंट हेलिना के द्वीप में बन्दी बनाया गया। इस लेख के सम्बन्ध के लिए इतिहास के इतने पृष्ट काफी हैं किन्तु इनके साथ हम यह भी कह देना चाहते हैं कि पाठक यह न समझें कि उस समय में सन्धि-परिषद् का ही अधिवेशन हुआ था बटवारा ही हुआ था और राष्ट्र-संघ या राष्ट्रों की पंचायत नहीं हुई जिसका उद्देश्य भविष्य में युद्धों का मिटाना होता। जैसे आजकल राष्ट्र-संघ का संगठन हो रहा है उसी प्रकार से उस समय में राष्ट्र-संघ से भी अच्छे

पवित्र-संघ (Holy alliance)

के नाम से राष्ट्रों की पंचायत हुई थी। वाटरलू के युद्ध के बाद ही रूस, आस्ट्रिया, जर्मनी आदि ने मिलकर पवित्र-संघ स्थापित किया था। इसका उद्देश्य परस्पर रक्षा और फ्रांस के सिंहासन पर नेपोलियन-वंश के किसी मनुष्य को न बैठने देना था। आज दिन इसी प्रकार यूरोप में Hohenzallern क़ैसर के घराने के प्रति ऐसी ही घृणा प्रकट की जा रही है और कहा जा रहा है कि उस घराने का कोई मनुष्य जर्मनी के सिंहासन को सुशोभित न करे। यह सब हुआ किन्तु सन्धि-परिषद् और

राष्ट्र-संघ व्यर्थ हुआ।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रबन्ध और लूट खसोट ऐसी हुई थी कि वह स्थायी नहीं रह सकती थी। अन्याय और अत्याचार के कारण संसार ने करवट बदला था ज़रूर किन्तु वह कढ़ाई से निकल कर भट्ठे में गिर पड़ा था। ऐतिहासिकों की राय में १८१५ का

पवित्र-संघ १७८६ के संघ से किसी बात में अच्छा न था और उसका फल संसार को शीघ्र ही भोगना पड़ा। फ्रांस ने राजा की वंशपरम्परा को ताक़ पर रक्खा जैसा कि इस समय जर्मनी में हुआ है और हालैण्ड, वेलजियम अलग अलग हुए। यूनान टर्की से छूटा, और टर्की का अङ्गभङ्ग आरम्भ हुआ। इटली और पोलैण्ड में राष्ट्रीयता को सफलता प्राप्त नहीं हुई, वे फिर गुलाम ही रह गये और स्पेन में गड़बड मची रही। यही नहीं १५ वर्ष बाद ही वियना कांग्रेस के मसौदे रद्दी कर दिये गये और

पवित्र-संघ नष्ट हो गया।

१८३० में मित्रों की मित्रता काफूर हो गई, समझौता सब दूर हो गया और मनमानी शुरू हो गई। १८१५ से १८७१ तक का यूरोपीय इतिहास विचित्रिताओं और महत्वाकांक्षाओं का घर है। प्रजा ने प्रजातंत्र का पाठ पढ़ना आरम्भ किया। इङ्गलैण्ड में (मेनचेस्टर में) एक प्रजातंत्रवादी का व्याख्यान सुनने को लोग एकत्रित हुए थे। फ़ौज ने सभा को भङ्ग करना चाहा। सरकारी हुक्म से सुननेवालों पर सेना टूट पड़ी कितने ही मरे और घायल हुए। प्रजा ने मन्त्रि-मण्डल से बदला लेने को समस्त मन्त्रियों को एकदम से संसार से उठा देने का निश्चय किया। यह छिपा न रहा और लोगों को फांसी हुई। उत्तरीय इङ्गलैंड और स्काटलैंड में इधर उधर बलवे होने लगे। कृषकों में जागृति हुई। प्रजा ने अपना स्वत्व मांगना शुरू किया और सुधारबिल पास हुआ। फ्रांस में भी गड़बड़ आरम्भ हुई, और नेपोलियन तीसरा राजा बन बैठा। जर्मनी में भी बलवे होने लगे और रूस ने टर्की को त्रस्त

करना आरम्भ किया। ज़ार निकोलस ने बैठे बिठाये एक बहाना ले

टर्की पर चढ़ाई

कर दी और उसके दो प्रदेशों पर कब्ज़ा कर लिया। इङ्गलैंड टर्की की मदद को या बढ़ती हुई रूस की शक्ति को कम करने को तैयार हुआ। फ्रांस ने भी टर्की की बांह गही। फल यह हुआ कि मार्च १८५४ में इङ्गलैण्ड और फ्रांस ने रूस से युद्ध ठान लिया। पुराना शत्रु फ्रांस मित्र हो गया और पुराना मित्र रूस शत्रु हो गया। इटली कुछ ही समय बाद स्वतंत्र हो गया दूसरी ओर जर्मनी के बिस्मार्क विधाता ने जर्मनी को धीरे धीरे आगे बढ़ाना शुरू किया। कुछ ही समय में आस्ट्रिया, फ्रान्स और रूस को अपनी कूटनीति से नीचा दिखा कर तथा वश में कर

जर्मनी रङ्ग मंच पर आया

और संसार को भीषण महाभारत देखना पड़ा। क्यों? क्योंकि वियना की कांग्रेस और पवित्र-संघ ने अन्याय की दीवारें उठाई थीं! सन्धि-परिषद् में राष्ट्रों ने लूट से अपना घर भरा था, उन्होंने फ्रान्स को नष्टभ्रष्ट कर उसके उपनिवेश छीने थे, फ्रान्स की परिषद् में कोई सुनवाई नहीं हुई थी, समस्त राष्ट्र स्वार्थ से अंधे हो रहे थे और सब की साम्राज्य-विस्तार की लालसा सब से बढ़ी हुई थी।

भूमि की भूख

मदिरा के नशे की भाँति शान्त नहीं होती, मद जितना पिया जाय, इच्छा और पिपासा उतनी ही और बढ़ती है। वह शान्त होनेवाली नहीं और शरीर के नष्ट होने पर ही शान्त होती है। भूमि की भूँख की ज्वाला भी जब तक शरीर को भस्मीभूत नहीं कर लेती, बढ़ती ही जाती है और शान्त होना नहीं जानती। उस समय का बटवारा न्याय पर नहीं स्थित था, अपने अपने मतलब के प्रदेशों को लोगों ने धर दबाया था, फ्रान्स की पूंछ नहीं थी और जिसके हाथ लाठी थी उसकी जय थी। न्याय का कहीं नाम न था, एक राष्ट्र की प्रजा भेड़ बकरी की भाँति दूसरे राष्ट्र की प्रजा बना दी गई थी। उस समय फ्राँस की दशा आज के जर्मनी की दशा से कहीं हीन थी। राजपक्षवादी और प्रजातन्त्रवादी खून की नदियाँ बहा रहे थे। फ्राँस में कम्यूनो (म्युनिसिपैलिटियों) का राज्य था, सभी शहर स्वतन्त्र शासन कर रहे थे। भीषण मारकाट और रक्तपात जारी था। किन्तु १८७१ का फ्राँस जागा। उसने शक्ति का संचय किया और आज वह जर्मनी को उसी दशा में देख रहा है जिस दशा में कि एक दिनवह था। सन्धि-परिषद् को इन इतिहास के पृष्ठों को अपने सामने रखना चाहिये और इनसे सबक लेना चाहिये। सन्धि-परिषद् विकृत रूप से चल रही है, भूमि की भूखकी ज्वाला से सम्मिलित राष्ट्र जल रहे हैं और दूसरों की भूमि, दूसरों के अधिकारों को पददलित करके ही वे उसे शान्त करना चाहते हैं। भूख इस प्रकार न शान्त हुई है और न हो सकती है। जर्मनी पंचायत में नहीं है। जिसकी भृकुटी से संसार के

राष्ट्र हिल जाते थे, जिसकी कनखियों के इशारे के सहारे से संसार के राजनीतिज्ञ अपनी चालें चलते थे, राष्ट्रों की पंचायत में जिसकी हाँ में हाँ मिलाते लोगों की ज़बान नहीं थकती थी वह आज राष्ट्रों की पंचायत से बहिष्कृत है। क्यों ? इसलिए नहीं कि न्याय हो रहा है वरन् इसलिए कि अब वह १८१५ के फ्राँस की भांति शक्तिहीन है, उसके घर में झगड़ा चल रहा है और हुंकार करने की उसमें शक्ति नहीं।

क़ैसर को दंड

देने, उसे क़ैद करने की चर्चा का बाज़ार गर्म है, यह नेपोलियन के साथ भी हुआ था किन्तु नेपोलियन के न होते हुए भी फ्राँस बलवान हुआ और अपने शत्रु से उसने बदला लिया। मित्रराष्ट्र क़ैसर का अपमान नहीं कर रहे हैं, क़ैसर से, संसार से कोई मतलब नहीं किन्तु जर्मन जाति संसार में रहेगी, जर्मन लड़के इतिहासों में आज की घटनाओं को पढ़ेंगे और मनुष्यों की भांति वे इस अपमान का बदला चाहेंगे। सन् १८६३ में भी फ्राँस राइन (Left Bank of the Rhine) के पश्चिमीय प्रदेशों पर कब्ज़ा चाहता था आज उसकी यह लालसा फिर प्रबल हो गई है। जर्मनी का यह प्राण है और जर्मनी से इसका अलग होना उसी तरह जर्मनी को खटकेगा जिस तरह से कि अलसेसलोरेन आज तक फ्राँस को खटकता रहा। जर्मन जनता विभाजित नहीं की जा सकती और आस्ट्रिया-हंगरी के जर्मननिवासी भी यों न पड़े रहेंगे। यदि खून का कोई सम्बन्ध है, यदि जातीयता का कोई भाव है, यदि राष्ट्रीयता का कोई जोश है जो सब तरह के कष्टों के सहने के लिए मनुष्यों को प्रसन्नता से तैयार कर देता है तो

जर्मन राष्ट्र इस समय से भी प्रबलशाली राष्ट्र हो कर उदित होगा और संसार को उसका सामना करना होगा। सुनते हैं पोलैंड को बन्दरगाह देने को जर्मनी का बन्दरगाह उससे छीना जायगा, क्या जर्मन राष्ट्र इसे सहन करेगा? जर्मनी के उपनिवेश भी छीने जा रहे हैं। न्याय के लिए? नहीं नहीं दूसरे राष्ट्रों की भूमि-पिपासा की शान्ति के लिए। फ्राँस, इटली, दक्षिण एफ्रिका, आस्ट्रेलिया, जापान, यूनान और भारत सभी अधिकार प्राप्ति के लिए पागल हो रहे हैं, इससे शान्ति नहीं स्थापित हो सकती। टर्की का भी अङ्ग-भङ्ग हो रहा है। १८७७ से रूस कुस्तुनतुनिया पर कब्ज़ा चाहता था। यूरोप में टर्की का होना यूरोपीय राष्ट्रों को बहुत दिनों से खटक रहा है। पीटर दि ग्रेट ने अपने वंशजों के लिए अपने बिल में ही लिख दिया था कि टर्की के प्रदेशों पर बिना कब्ज़ा किये रूस की वृद्धि नहीं। इटली से लड़ाई हुई तब भी किसी ने टर्की की मदद नहीं की। सर एडवर्ड ग्रे ने कहा था कि इटली संसार के मंच पर सबसे पीछे आया है। उसे राज्यविस्तार का मौका नहीं मिला, अब अवसर उसके हाथ आया है, ऐसी अवस्था में हम उसके मार्ग में नहीं खड़े होना चाहते। टर्की के कितने ही प्रदेश स्वतन्त्र हो गये और वह भी उस समय में जब की टर्की में नवयुवक दल का शासन था जिसकी सब लोग प्रशंसा कर रहे थे और जिससे कि बहुत कुछ आशा थी किन्तु टर्की को सुशासन स्थापित करने में सहायता देने की बात तो दूर रही उसी समय मौका पाकर राष्ट्र उसपर टूट पड़े। अमेरिका भी उस समय न्याय करने को नहीं खड़ा हुआ। १९१४ में इस महाभारत के आरम्भ होते ही यूरोपीय राजनीतिज्ञों ने

कुस्तुन्तुनिया का बटवारा

निश्चित कर लिया था। उस समय "टाइम्स आव इण्डिया" मे लिखा था कि सुलतान के हाथ से लेकर इसे ज़ार को दे देना चाहिये। उसने लिखा था कि रूस के पास सेना है, नौ-सेना है, वह बड़े वेग से उन्नति भी कर रहा है, किन्तु जब तक कुस्तुन्तुनिया पर तुर्कों का कब्ज़ा है, जब तक डार्डिनेल्स पर तुर्कों का अधिकार है तब तक रूस के व्यापार की वृद्धि नहीं हो सकती। उसी समय यह चर्चा भी चली थी कि टर्की यूरोप से निकाल बाहर किया जाय। अब फिर यही सब हो रहा है फर्क यही है कि रूस अब मित्र नहीं रहा इस लिए रूस का नहीं वरन् सभी मित्रराष्ट्रों का कुस्तुन्तुनिया पर समान अधिकार रखने की बातचीत हो रही है। यह बहुत बुरा होगा। कुस्तुन्तुनिया केवल भौगोलिक नाम नहीं है, वह एक शहर मात्र भी नहीं है, वह मुस्लिम सभ्यता का हृदय है और कुस्तुन्तुनिया पर से तुर्क झण्डा हटाना वैसा ही हानिकर है जैसे संसार से मुस्लिम सभ्यता को नेस्त-नाबूद करना। यदि टर्की ने कोई पाप किया है तो जर्मनी उसका गुरू है कोई बर्लिन पर कब्ज़ा करना क्यों नहीं चाहता? इस सम्बन्ध में हमको यह भी न भूलना चाहिये कि मुस्लिम धर्म कोरा धर्म ही नहीं है, वह एक उच्च कोटी की सभ्यता है और संसार में उसका प्रभाव कम करना बहुत बड़ा पाप होगा। हमको जर्मनी या टर्की से कोई सम्बन्ध नहीं, हमको रूस, फ्राँस, अमरीका आदि से भी इस मामले में कोई सम्बंध नहीं, हमको सम्बन्ध है केवल भारत और उसके भविष्य से, भारत संसार में है और भारत का भविष्य संसार के भविष्य से लिपटा हुआ है इसलिए

संसार के भविष्य

की हमको चिन्ता है। सन्धि-परिषद् में उस भविष्य का चित्र चित्रित हो रहा है, निकट भविष्य की झांकी का ख़ाका छोड़ा जा रहा है इसीलिए संसार के नागरिक की हैसियत से उससे हमारा घना सम्बन्ध है। सन्धि-परिषद् स्वार्थ और भूमि की भूख से मतवाली हो रही है, हम देख रहे हैं कि वह चिर-स्थायी शान्ति की नहीं वरन् युद्ध की नींव डाल रही है और इस कारण से हम समझते हैं कि भावी संसार-संकट का वह बीज वपन कर रही है। स्वभाग्य-निर्णय का मसला भी नया नहीं है। ट्रिपली के युद्ध में ही सर एडवर्ड ग्रे ने उसका बीज बोया था। हम कभी इस बात को दिखलावेंगे कि संसार-संकट और स्वभाग्य-निर्णय में क्या सम्बन्ध है। इस समय इतना ही कह देना काफी होगा कि सन्धि-परिषद्, राष्ट्र-संघ आदि से संसार में शान्ति नहीं विराजेगी, शान्ति के लिए पवित्रता और न्याय की ज़रूरत है और शान्ति का स्वप्न संसार में उसी दिन देखा जा सकता है जब संसार में प्रत्येक जाति और राष्ट्र स्वतंत्रता प्राप्त कर लें, जब सभ्यता, धर्म, न्याय, समता और उदारता की वेदी पर स्थापित हो, जब इन्द्रिय-परायणता और स्वार्थमय साम्राज्य-विस्तार की लालसा राष्ट्रों की मिट जाय और जब गोरे, काले, भूरे, पीले, ईसाई, मुसलमान, जापानी, चीनी, हब्शी सब को संसार में समान अधिकार प्राप्त हो।

(अभ्युदय १५ फरवरी १९१९)

संसार की सैर

यूरोपीय इतिहास के पिछले तीस वर्ष।

चतुर्थ परिच्छेद

वर्तमान यूरोप की स्थिति को समझने और यूरोप के भविष्य का अन्दाज़ा लगाने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि पिछले ३० वर्षों के इतिहास पर दृष्टि डाली जाय। कारण यह है कि इन वर्षों में उन सब राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक शक्तियों का विकास हुआ है जिनकी प्रेरणा से यूरोपीय महायुद्ध का आरम्भ हुआ और जिनका प्रभाव बहुत दिनों तक यूरोप तथा संसार पर रहने की सम्भावना है।

यूरोप के इस युग का आरम्भ सन् १८८५ से होता है। इस सन् में यूरोपीय राष्ट्रों में साम्राज्य स्थापन की उत्कट आकांक्षा उत्पन्न हुई। उत्तरी तथा दक्षिणी अमरीका लूटेरों

के हाथों के बाहर था क्योंकि यूनाईटेड इस्टेट्स के प्रेसीडेंट मनरो ने इनकी रक्षा का विज्ञापन बहुत समय हुए दे दिया था। यूरोप में किसी राष्ट्र का दूसरे के प्रान्तों पर कब्ज़ा करना अत्यंत कठिन था, क्योंकि राष्ट्रों की आपस की ईर्ष्या किसी एक को बढ़ता और फैलता देख नहीं सकती थी और राष्ट्रों के बलसाम्य Balance of power के घट बढ़ जाने का भय सब को अपनी सरहद में रहने पर मजबूर करता था। आस्ट्रेलिया इङ्गलैंड के अधीन हो ही चुका था इस कारण पृथ्वी पर केवल एशिया और एफ्रिका के दो महाद्वीप और प्रशांत महासागर के कुछ द्वीप ही बटवारे के लिए बाकी थे। इन्हीं के बांट लेने के लिए एंचातानी आरम्भ हुई। सब से पहिले एफ्रिका का विभाजन हुआ क्योंकि यहां हब्शी जातियाँ आबाद हैं और वे यूरोपीय सभ्य जातियों के मुकाबिले में अपनी रक्षा में असमर्थ हैं। अंग्रेज़ों ने मिश्र पर, फ्रांस ने मराको, ट्यूनिस, पश्चिमोत्तरी एफ्रिका और मेडागास्कर पर, जर्मनी ने पूर्वीय तथा पश्चिमी भाग और कैमरून पर, इटली ने पूर्वोत्तरीय भाग पर और बेलजियम ने कांगो पर अधिकार जमाया और समस्त महाद्वीप यूरोपीय राष्ट्रों में बँट गया। जो भाग बचे उनपर इटली और रूस की आँख लगी रही। रूस को कुछ सफलता न प्राप्त हुई किन्तु इटली ने ट्रिपली को तुर्कों से छीन लिया। एशिया में अंग्रेज़ हिन्दुस्तान के मालिक थे इस घबराहट में कि कहीं रूस अथवा फ्रांस निकट के देशों पर अधिकारी न हो जायँ, उन्होंने अफ़ग़ानिस्तान, बलोचिस्तान, अरब के तट और फ़ारस की खाड़ी को पश्चिम दिशा में और बर्मा को पूर्व में अपने अधीन किया। रूस मध्य एशिया में बढ़ते बढ़ते अफ़ग़ानिस्तान की सरहद पर

और पूर्व की ओर चीन कोरिया तक आ पहुंचा । फ्रांस ने अनाम और टोनकीन पर कब्ज़ा कर लिया । एशिया में केवल ३ स्वाधीन देश बच रहे—चीन, ईरान और टर्की । इन तीनों को बांटने के लिए यूरोपीय राष्ट्रों में पिछले तीस वर्षों से बड़े प्रयत्न हो रहे हैं और महायुद्ध के अन्य कारणों में इन देशों के विभाग का झगड़ा भी एक महत्वशाली कारण है।

संसार की दुर्बल जातियों को अपने अधीन करने और एफ्रिका तथा एशिया के देशों को अपने अधिकार में लाकर साम्राज्य स्थापित करने की लालसा में यूरोप ने बड़ा परिश्रम किया है । इसी कारण इस युग को साम्राज्य संगठन (Imperialism) का युग कहते हैं। किन्तु साम्राज्य को संगठित रखने के लिए बड़े साधनों की आवश्यकता होती है। दूसरी जातियों को पराजित करके उनपर स्वायत्त-शासन जमाये रखने के लिए जेताओं को बड़ी जल और स्थल-सेना और बड़े सामान की आवश्यकता होती है। जेता राष्ट्र को अपने ऊपर अत्यन्त कष्ट सहने पड़ते हैं, समस्त राष्ट्र को संगठित रूप से रुपया पैदा करने और लड़ाई का सामान तैयार करने में व्यस्त होना पड़ता है और राष्ट्र के व्यक्तियों को कड़े सैनिक कर्तव्यों (Military duties) का पालन करना होता है । राष्ट्रीय गौरव और साम्राज्यिक वैभव पाने के लिए कठिन त्याग और सेवा आवश्यक है । दो बातें इन कठिनाइयों के झेलने के लिये राष्ट्रों को उद्यत करती हैं । एक राष्ट्रीय-प्रेम और दूसरी आर्थिक आवश्यकता । यूरोपीय जातियों के देश-प्रेम के बारे में कुछ अधिक कहना व्यर्थ है । इस प्रेम की प्रबलता सब को विदित है । आर्थिक दशा की बात सब भली भांति नहीं जानते हैं। इसपर विचार करने

की ज़रूरत है। जब से यूरोप में विज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ (अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ से) तब से यूरोप की आर्थिक तथा सामाजिक दशा में इतना भारी अन्तर हुआ है कि उसका ठीक ठीक अनुमान करना अभी सम्भव नहीं है। इस विज्ञान की उन्नति ने आर्थिक दशा को बिलकुल ही बदल डाला है। उन्नीसवीं शताब्दी से पहिले यूरोप और एशिया में बहुत थोड़ा अन्तर था अब ज़मीन आसमान का फ़र्क़ है। १८५० से पहिले यूरोप में शिल्प आरम्भिक अवस्था में था, कारख़ानों से थोड़ा माल निकलता था जो राष्ट्र की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त होता था। किन्तु १८५० से १८८५ तक इस शिल्प (Industry) में युगान्तर हुआ। पहिले इङ्गलैंड में और फिर यूरोप के अन्य देशों में पूंजीवालों (Capitalists) ने शिल्प को अपने अधीन कर राष्ट्रीय आवश्यकताओं से कितने गुना अधिक माल तैयार करना आरम्भ किया। माल की उत्पत्ति बड़े परिमाण Large scale production पर होने लगी और इस माल को दूसरे देशों में बेंच कर लाभ उठाने को फ़िक्र उत्पन्न हुई। माल की निकासी के लिए ख़रीदनेवालों की ढूंढ़ हुई। यूरोप के बराबरवाले देशों में सारे माल की खपत असम्भव देख इसको अन्य जातियों के सिर मंढ़ने की तदबीरों पर विचार होने लगा। माँग और लाभ की अधिकता के विचित्र परिणाम हुए। पहिले तो पूंजीवालों ने अपना पेट खूब भरा फिर थोड़ा भाग उन लोगों ने श्रमजीवियों को देना स्वीकार किया। श्रमजीवियों के श्रम के समय में कमी हुई, उनकी आर्थिक दशा सुधरी और उन्हें राजनैतिक अधिकारों के प्राप्त करने की सूझी। एक ओर शासन को श्रमजीवियों की इच्छा पर आश्रित करने का आन्दोलन चला

और प्रजातत्र के स्थापित होने का समय आया, दूसरी ओर माल को दुर्बल और अपनी रक्षा में असमर्थ जातियों के हाथ ज़बर्दस्ती बेंचने और लाभ उठाने की नीच अभिलाषा ने इन प्रभावशाली धनी राष्ट्रों को एशिया तथा एफ्रिका के देशों पर कब्ज़ा करने को उसकाया। धन की वृद्धि के साथ साथ आबादी भी बढ़ी और यूरोपीय राष्ट्रों के सामने इस आबादी को ठिकाना देने का कठिन प्रश्न उपस्थित हुआ। लाभ की लालच के ऊपर उपनिवेश की खोज ने सोने पर सुहागे का काम दिया। साम्राज्य-संगठन की लालसा ने राष्ट्रों को अत्यन्त उत्कंठित किया। एशिया, एफ्रिका और छोटे बड़े द्वीप यूरोपीय राष्ट्रों की आर्थिक क्षुधा के शिकार हुए। यूरोप में प्रजातंत्र और साम्राज्य (Demoracy and Empire) का अनोखा मेल हुआ। घर पर समता (Equality) और स्वतंत्रा (Liberty) साम्यवाद (Socialism) और समाजिक सुधार (Social amelioration) की आवाजें उठी, स्त्रियों के अधिकार बढ़ाने की कोशिश शुरू हुई, बच्चों की रक्षा और बूढ़ों के पोषण के प्रबन्ध के लिए नियम बने, अनिवार्य शिक्षा के प्रचार और विज्ञान के विस्तार से अज्ञान और अन्धविश्वस में कमी हुई, सम्प्रदायों और मतमतान्तरों के कट्टरपन ढीले हुए। व्यक्ति सुख और सभ्यता का जीवन व्यतीत करने लगे, राष्ट्र बलशाली, धनाढ्य और गौरवान्वित हुए। बाहर सभ्य यूरोपियनों की सभ्यता अन्य जातियों के संयोग से विकट निष्ठुरता में बदल गई। "यहूदी (Jew) जाति पर पहिले कुठार चला। यूरोपीय राष्ट्रों की आर्थिक तथा शिल्प सम्बन्धी वृद्धि के यहूदी एकमात्र कारण थे, उनकी मितव्ययिता ने यूरोप को वह पूंजी दिलाई थी जिससे उनके कारखाने बढ़े थे किन्तु

साहूकार सदा घृणित होते हैं; यहूदी भी घृणा के पात्र बने और जर्मनी, रूस, फ्रांस इत्यादि में उनको अत्यन्त कष्ट दिये गये। एफ्रिका में यद्यपि गुलामी का अन्त हो चुका था किन्तु गुलामी नया वेष धारण कर फिर उपस्थित हो गई। सूर्य की कड़ी किरणों से पोड़ित एफ्रिका में ठण्डे मुल्कवाले यूरोपीय श्रमजीवी रह नहीं सकते, इसलिए उन्होंने ठीके के कुलियों की प्रथा चलाई। काङ्गो में बेलजियम के निवासियों ने रबर के लिए दीन निर्बल हब्शियों के हाथ पैर काटे और सैकड़ों को वृक्षों पर टांग फांसी दे दी। अंगोला में सहस्रों को जीते चिता पर चढ़ा दिया। पूर्वी एफ्रिका में जर्मनों ने बच्चों और स्त्रियों को तलवार के घाट उतारा और दक्षिणी एफ्रिका में अङ्गरेज़ी साम्राज्य की छत्रछाया में हिन्दुस्तानियों पर अपमानों और कष्टों की वर्षा हुई। एशिया में चीन पर यूरोपीय राष्ट्र उसके टुकड़े टुकड़े कर डालने को चढ़ दौड़े। जर्मनी ने कियाचाऊ पर, इङ्गलैंड ने हांग कांग पर, रूस ने मन्चूरिया पर फ्रांस ने टौनकीन पर कब्ज़ा कर लिया और सब ने मिल कर पेकिङ्ग में खून की नदियां बहाईं। ईरान को रूस और इङ्गलैंड ने बांट लिया। रूसियों ने ईरानियों पर तरह तरह के उपद्रव किये, औरतों को बेइज़्ज़त किया, बच्चों को कटवाया और निःशस्त्र मज़हबी नेताओं और मौलवियों को फांसी पर टंगवा दिया। इङ्गलैंड, जो टर्की से आर्मीनियनों के संहार के बारे में अति क्रोधित रहता है अपने मित्र की क्रूर घृणित कार्रवाइयों को चुपचाप देखता रहा और एक शब्द न बोला अफ्रीका में डाक्टर विल्सन के देशवासियों ने एशियाइयों को अपने तटों पर उतरने से रोका और अमरीका निवासियों ने नीग्रो जाति पर लिंचला (Lynch law)

का प्रयोग किया। (बिना मुकद्दमा चलाये गोरों ने कालों को पकड़ आग में जलाया अथवा फांसी पर चढ़ाया या उनकी खलड़ी उचेर डाली)। सभ्य यूरोप ने सिद्ध कर दिया कि निर्बलता से बढ़कर संसार में और कोई पाप नहीं है। बलवान को ईश्वरदत्त अधिकार है कि निर्बल को अपने पैरों तले कुचले और उसे अपमानित करे। बल सत्य है, बल श्रेय है, बल कल्याण है, बल की पूजा व्यक्ति तथा राष्ट्र का धर्म है. इसी सिद्धांत पर यूरोपीय समाज का सङ्गठन स्थापित है। दूसरे राष्ट्रों के बल को घटाना और स्वराष्ट्र के बल को बढ़ाना यही यूरोपीय राजनीतिज्ञों की समस्त नीति का उद्देश्य है। यूरोप के बल साम्य (Balance of power) को कायम रखने के लिए पिछले ३० वर्षों में अद्भुत उतरा चढ़ी रही है। १८७० में फ्रांस को हराने के बाद जर्मनी के महानीतिज्ञ बिस्मार्क की नीति फ्रांस को मित्रहीन तथा पृथक रखने की थी। बिस्मार्क का मन्तव्य यह था कि फ्रांस दूसरे राष्ट्रों से मिल कर कहीं जर्मनी पर धावा न करे और इसी कारण उसने फ्रांस को अकेला रखने की अत्यन्त कोशिश की। इस नीति में बिस्मार्क को बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई। पहिले पहिल उसने रूस से मित्रता करनी चाही। रूस का सम्राट् अलेकज़ेण्डर जर्मन सम्राट् विलियम का भतीजा था इससे संधि में सुगमता हुई रूस काले समुद्र में अपने जंगी बेड़े को रखना चाहता था और कुस्तुन्तुनियां (Constan'inople) पर उसका दांत था। बिस्मार्क ने इस अभिलाषा के पूर्ति में बाधा न डाली और दोनों सम्राटों में मित्रता हो गई। किन्तु १८७८ में जब रूस और टर्की में युद्ध हुआ और युद्ध के निपटारे के लिए बर्लिन में सभा बैठी तब बिस्मार्क ने रूस के अर्थों के विपरीत

फ़ैसला दिया। रूस जर्मनी से चिढ़ गया और रूस जर्मनी में फ़साद होने का भय उत्पन्न हुआ। बिस्मार्क ने आस्ट्रिया से रूस के ख़िलाफ़ सन्धि की और उस समय से जर्मनी और आस्ट्रिया का गुट बन गया। आस्ट्रिया की मित्रता के कारण यह थे कि आस्ट्रिया बल्कान में अपना शासन जमाना चाहता था और इस मामले में रूस का प्रतिद्वन्द्वी था। स्वभावतः आस्ट्रिया ने रूस और जर्मनी की अनबन को ग़नीमत जाना और रूस के विरुध्द जर्मनी से मित्रता की।

तीन वर्ष बाद बिस्मार्क को इटली से मित्रता का मौक़ा मिला। इटली और फ्रांस में कोई बैर की वजह न थी किन्तु दोनों एफ्रिका के उत्तरी भागों पर अधिकार जमाना चाहते थे। बिस्मार्क ने फ्रांस को १८७० की हार की याद भुलाने के लिए ट्यूनिस पर क़ब्जा करने को भड़काया। इंगलैण्ड ने बिस्मार्क का साथ दिया, क्योंकि इंगलैण्ड साईप्रेस को हथियाना चाहता था दो तरफ से सहायता पा कर फ्रांस ने ट्यूनिस को अपने अधीन किया। इटली को अत्यन्त क्रोध आया और उसने बिस्मार्क से सन्धि की प्रार्थना की। तीन राष्ट्रों का त्रिगुट बना इंगलैण्ड अलग रहना पसन्द करता था। रूस के ज़ार ने तटस्थ (neutral) रहना चाहा और फ्रांस अकेला रह गया। बिस्मार्क की नीति पूर्ण रूप से सफल हुई। १८९० में जर्मनी के नये सम्राट् विलियम तृतीय ने बिस्मार्क को चान्सेलर के पद से हटाया और साम्राज्य को नये पथ पर चलाया। विलियम ने रूस की परवाह न कर त्रिगुट के भरोसे पर एफ्रिका और एशिया में प्रदेशों को हस्तगत करना आरम्भ किया। रूस ने जर्मनी की उपेक्षा देख फ्रांस की ओर हाथ बढ़ाया। १८९४ में दोनों राष्ट्रों में मित्रता की संधि

हुई। प्रजातन्त्रिक फ्रांस (Democratic France) और एकाधिवर्तक (Autocratic) रूस गले मिले। फ्रांस के धन की सहायता से रूस ने अपनी सेना तथा शिक्षा को उन्नत किया और साम्राज्य के विस्तार की अभिलाषा को कृतकार्य करना आरंभ किया रूस चारों ओर से ऐसे देशों से घिरा है कि कहीं उसे समुद्र का ऐसा किनारा नहीं मिलता जहां वह अच्छा बन्दरगाह बना सके। जो समुद्रतट उसके अधीन हैं उनके बन्दरगाह वर्ष में छः सात महीने वर्फ से ढके रहते हैं। इस कारण सदा से रूस को प्रबल आकांक्षा रही है कि किसी ओर उसे ऐसा समुद्र तट मिले जहाँ जहाज़ वर्ष भर आजा सकें। कुस्तुन्तुनियां पर इसीसे इसका बहुत दिनों से दांत है। किन्तु बल्कान की ओर बढ़ने और कुस्तुन्तुनियां पर कब्जा करने के लिए आस्ट्रिया और उसके मित्र जर्मनी और इटली से लड़ना पड़ता इस कारण कुस्तुन्तुनियां की अभिलाषा को कुछ समय के लिए त्याग उसने इरान तथा फ़ारस की खाड़ी और प्रशान्त महासागर के तट कोरिया का ध्यान बांधा। यहां भी दुर्भाग्यवश उसे फलप्राप्ति न हुई। फ़ारस की खाड़ी में इङ्गलैंड ने पैर जमने न दिया तब उसने कोरिया में पोर्टआर्थर पर अधिकार किया और मास्को से पोर्ट-आर्थर तक कई हज़ार मील लम्बी रेलवे लाइन डाली। कोरिया के मामले में उसे जापान से मुक़ाबिला करना पड़ा। १९०४ के युद्ध में वह जापान से पराजित हुआ और पोर्टआर्थर जापान के हाथ आया। प्रशांत महासागर (Pacific ocean) तथा हिन्द महासागर (Indian ocean) से धुत्कारे जाने पर रूस फिर कुस्तुन्तुनियां की ओर झुका। बल्कान की छोटी जातियों पर अपना प्रभाव डालने और उन्हें आस्ट्रिया से

विमुख करने के लिए उसने समस्त स्लाव (slavic) जातियों के एकीकरण का आन्दोलन चलाया। बल्गेरिया, सर्विया, मांटीनिग्रो, ग्रीस आदि की स्लाव आबादी को आस्ट्रिया और टर्की के विरुद्ध भड़काया। इसका परिणाम यह हुआ कि टर्की ने पैन-इस्लामिक (Pan Islamic) अर्थात् समस्त मुसलमानों के एकीकरण और जर्मनी ने पैन ट्यूटानिक (Pan Teutonic) अर्थात् समस्त जर्मनों के एकीकारण का आन्दोलन आरम्भ किया और इनकी होड़ में पैन-लैटिन (Pan Latin) अर्थात् समस्त लैटन जातियों के एकीकरण और पैनऐङ्गलिक (Pan Anglic) अर्थात् अंगल जातियों के एकीकरण के आन्दोलन चलने लगे। यूरोप जातीय भेदों (racial differences) और जातीय आन्दोलनों का रणक्षेत्र बन गया।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की दशा यह थी कि एक ओर जर्मनी, आस्ट्रिया और इटली का त्रिगुट था दूसरी ओर इसके मुक़ाबिले पर फ्रांस और रूस का द्विगुट था किन्तु त्रिगुट का एक सभासद अर्थात् इटली फ्रांस की ओर झुका हुआ था। आस्ट्रिया इटली में बल्कान के सम्बन्ध में झगड़ा था, इटली और फ्रांस में सहानुभूति थी इसलिए त्रिगुट वास्तव में द्विगुट रह गया था। किन्तु शताब्दी के आरम्भ में जर्मनी ही यूरोप में प्रधान था।

इस समय तक इङ्गलैंड की नीति यूरोपीय राष्ट्रों में किसी से मित्रता न करने की थी। वह अलग अपने साम्राज्य की वृद्धि में संलग्न था। क्योंकि उसे किसी यूरोपीय राष्ट्र से भय नहीं था। १८८५ से १९०३ तक इङ्गलैंड फ्रांस से पुरानी अदावत के कारण रुष्ट था। फ्रांस के उपनिवेशों की खोज ने

पुराने वैर की आग को और भड़काया। इङ्गलैंड ने मिश्र पर कब्ज़ा किया, और फ्रांस ने एफ्रिका तथा एशिया के प्रदेशों पर। इस प्रकार आपस की खींचतान और कड़ी होती गई। किन्तु १९०३ में इङ्गलैंड, फ्रांस की ओर झुकने और जर्मनी से खिंचने लगा। इङ्गलैंड की नीति के बदलने के कारण कई थे। जर्मनी के शिल्प और व्यापार के बढ़ने से ईर्षा उत्पन्न हुई। जर्मनी ने संसार में इङ्गलैंड को नीचा दिखाना शुरू किया। चीन में बाक्सर उपद्रव के बाद जर्मनी, रूस इत्यादि ने बिना इङ्गलैंड से पूंछे संधि की और इङ्गलैंड के प्रभाव को प्रशांत महासागर के तट पर कम कर दिया। बूअरों के युद्ध के समय जर्मन सम्राट् ने बूअरों से सहानुभूति प्रकट की इङ्ग-लैंड ने इसका बदला यह लिया कि जब जर्मन सम्राट् ने टर्की के सुलतान से बगदाद रैलवे खोलने के लिए बात छेड़ी, इङ्गलैंड ने इसका विरोध किया किन्तु टर्की ने जर्मन सम्राट् का कहना माना क्योंकि टर्की को इङ्गलैंड की ओर से संदेह उत्पन्न होने लगा था। जर्मनी ने जब जहाज़ों का बेड़ा बनाने की प्रतिज्ञा की तब तो इङ्गलैंड बिलकुल ही जर्मनी के विरुद्ध हो गया और एडवर्ड सप्तम ने फ्रांस से सन्धि करने का डौल डाला। १९०४ में संधि हो गई। इङ्गलैंड ने फ्रांस को मराको पर अधिकार जमाने की इजाजत दी और आपस के अन्य झगड़ों का फैसल कर लिया। इङ्गलैंड को जर्मनी के मुक़ा-बिले के लिए मित्र मिल गया और फ्रांस की पुष्टि हुई। इसके अनन्तर इङ्गलैंड और रूस जो मुद्दतों से बैरी थे आख़िरकार दोस्त बन गये। रूस फ्रांस का मित्र था ही फ्रांस की सिफ़ा-रिश से फांस के नये मित्र इङ्गलैंड और रूस में सन्धि हुई। इङ्गलैंड ने रूस के कुस्तुन्तुनियां की ओर बढ़ने की आकांक्ष

का स्वीकार किया। इतना ही नहीं इङ्गलैंड और रूस ने १६०७ में एशियाई झगड़ों को तै कर दिया और इस तरह जापान जो इङ्गलैंड का मित्र था, रूस का मित्र हुआ। इस प्रकार फ्रांस, इङ्गलैंड, रूस और जापान मित्र हो गये। त्रिगुट में से इटली की सहानुभूति फ्रांस की ओर थी ही, जर्मनी को संदेह होने लगा कि यूरोपीय राष्ट्र उसे अकेला और मित्र हीन बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। १६०६ में अल्जेकीरस की सभा, १६०८ में बल्कान के झगड़ों और १६१२ में बल्कान युद्ध ने इस सन्देह की पुष्टि की जर्मनी को पूरा विश्वास हो गया कि इङ्गलैंड उसको परास्त करने और उसकी आर्थिक तथा साम्राज्यिक वृद्धि के रोकने का प्रबन्ध कर रहा है और दूसरी ओर इङ्गलैंड तथा उसके मित्रों ने समझ लिया कि यूरोपीय बल-साम्य का प्रतिपादन जर्मन बल के तोड़े बिना नहीं हो सकता। १६१४ में आर्थिक, औपनिवेशक तथा राष्ट्रीय विरोधों की तीव्रता उस सीमा को पहुंच गई जहां बिना युद्ध के फैसला असम्भव था। जर्मनी ने अपने को अकेला पाकर इङ्गलैंड को आयर्लैंड के होमरूल के झगड़े में व्यस्त, रूस को विप्लव में मग्न और फ्रांस को अयोग्य जान मौक़ा पाया और लड़ाई का डंका बजा दिया। जर्मनी के अनुमान में भूल हुई। एमेरिका के साथ भी व्यवहार करने में उसने बार बार ग़लती की और इन भूलों का परिणाम यह हुआ कि प्रजा ने शासनाधिकारियों को अयोग्य समझ राजक्रांति कर डाली। जर्मन सेना विप्लवी बिचारों के प्रभाव से लड़ने में ढीली पड़ गई और मित्रदल की विजय हुई।

(मर्यादा जनवरी मास १६१६ की सम्पादकीय टिप्पणियों से उद्धत)

कैसर ने क्या किया।

बल की वेदी।

पांचवां परिच्छेद।

युद्ध के बीजवपन की तैयारी ज़ोरों से हो रही है। राष्ट्र-संघ का संगठन हो रहा है किन्तु बलवानों को, जो रक्त की धारा में स्नान कर पवित्र हो चुके हैं, और स्वतंत्र हैं, जो दूसरों की बपौती पर क़ब्ज़ा किये बैठे हैं और उनपर अन्याय कर रहे हैं या जो ख़ून की नदियां बहा चुके हैं इनको ही संघ में स्थान मिल रहा है इसके साथ ही साथ यह भी हो रहा है कि जर्मनी, और रूस जो चार दिन पहिले बलशाली थे, जो अब भी बलशाली और स्वतंत्र हैं, संघ में नहीं हैं क्योंकि राष्ट्र उनका अपमान करने पर, अपने को बलशाली और विजयी दिखलाने पर तुले हुए हैं। इसका अर्थ यही है कि संघ भी

बल की वेदी

पर स्तम्भित हो रहा है। एक ओर यह हो रहा है दूसरी ओर राष्ट्र सेना और नौ-सेना के संगठन और वृद्धि में लीन हैं। अमरीका सेना की वृद्धि के लिए घोर प्रयत्न कर रहा है। ६ अरब रुपया ख़र्च करना उसने निश्चित किया है और यदि अपने प्रयत्न में उसको सफलता प्राप्त हुई तो संसार में वह शीघ्र ही सर्वश्रेष्ठ हो जायगा। अमरीका का प्रजातंत्र राष्ट्र, जो सन्धि का पथ-दर्शक है, जो शान्ति, समता, स्वतंत्रता और स्वभाग्य-निर्णय का हिमायती है, यह कर रहा है। संसार के राष्ट्र भी चौकन्ने हैं और सब अपनी धुन में लगे हुए हैं। वे समझ रहे हैं कि बल के ज़ोर से, शक्ति के सहारे हम लोग इस समय मनमानी कर रहे हैं और शक्ति के बल से ही हम इस निश्चय को चिरस्थायी बनाये रह सकते हैं इङ्गलैण्ड भी सो नहीं रहा है. एडमिरल जेलिको नौ-सेना की फ़िक्र में हैं, वह उसकी वृद्धि करेंगे, मि० चर्चिल सेना की धुन में पागल हो रहे हैं। जर्मनी में अस्त्र रखाने के लिए इङ्गलैण्ड में सेना की भर्ती आरम्भ हो गई है। एक हज़ार से अधिक सैनिक नित सेना में सम्मिलित किये जा रहे हैं। जर्मनी भी सचेत है। वहां भी सेना का संगठन हो रहा है। फ्रान्स अन्तर्राष्ट्रीय सेना और नौ सेना का केन्द्र फ्रान्स में रखना चाहता है जिसमें जर्मनी से वह अपनी रक्षा कर सके। रक्षा का सर्वोत्तम उपाय यह है कि उदारता और न्याय का व्यवहार कर वह जर्मनी के हृदय को अपनी मुट्ठी में कर ले किन्तु उसे यह प्रिय नहीं। जर्मन सरकार के पर-राष्ट्र सचिव ने यह कह कर अभी अपना इस्तीफ़ा दाख़िल किया था कि फ्रांस युद्ध करने पर तुला

हुआ है और वह युद्ध करेगा। बेलजियम हालैण्ड की जमीन पर ज़बर्दस्ती क़ब्ज़ा करना चाहता है डच कहते हैं कि

सूच्यग्रं नैव दास्यामि

एक सूई की नोक के बराबर भी हम भूमि न देंगे। इटली और जागोस्लावों में भी झगड़ा पड़ा हुआ है, इटली साफ़ साफ़ कह रहा है कि हम रा० विल्सन को पञ्च नहीं बनाना चाहते और न हम उनके फ़ैसलों को मानेंगे। बालकन युद्ध के अन्त होने पर विजयो दल में लूट मार के सम्बन्ध में जैसा झगड़ा हो गया था वैसा ही वैमनस्य फिर होता नज़र आ रहा है। राष्ट्र-संघ में हमको विश्वास नहीं, उसके नियम ज़रूर अच्छे हैं किन्तु वे न्याय और समान अधिकार पर स्तम्भत नहीं, दूसरे अन्ततोगत्वा शक्ति के फ़ैसले पर उसका फ़ैसला भी स्थित है, साथ ही जर्मनी, रूस आदि के सम्मिलित न होने से सर्वश्रेष्ठ रूप में भो वह केवल

अन्तराष्ट्रीय पुलीस

का ही काम कर सकता है। जर्मनो या रूस से कभी युद्ध होने पर राष्ट्र-संघ के राष्ट्र—यदि आज के राष्ट्र उस समय तक सब एक रहे तो जैसे आज वैसे ही उस समय में—सब एक होकर लड सकते हैं। आस्ट्रिया में राष्ट्रीय सभा का जो चुनाव हुआ है उनमें अधिकतर संख्या उनकी है जो जर्मनी से मेल रखने के पक्ष में हैं। यह बात भो मानी से खाली नहीं है। दक्षिण एफ्रिका के राष्ट्रीय पक्षवाले इङ्गलैण्ड से सम्बन्ध अलग करना चाहते हैं और अमरीकन सेनेट अर्थात् अमरीका तथा रा० विल्सन जहाँ तक मालूम होता है बोअरों का पक्ष

लेंगे, आयलैंण्ड के यद्यपि समाचार नहीं मिल रहे हैं किन्तु यह निश्चय है कि वह भी स्वतंत्र प्रजातंत्र चाहता है। इङ्गलैंड में मजदूर बिगड़े हुए हैं, उनमें वही भाव फैल रहे हैं जो रूस और जर्मनी में फैल चुके हैं। इस समय दशा ऐसी है।

वर्तमान यूरोपीय स्थिति

को समझने और यूरोप के भविष्य का अन्दाज़ा लगाने के लिए यह आवश्यक था कि यूरोप के पिछले और विशेषकर पिछले तीस वर्षों के इतिहास का हमको ज्ञान हो क्योंकि इन्हीं वर्षों में उन सब राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक शक्तियों का विकाश हुआ था जिनकी प्रेरणा से यूरोपीय महाभारत हुआ और जिनका प्रभाव बहुत दिनों तक यूरोप तथा संसार पर रहेगा। पिछले परिच्छेदों में इस समय के इतिहास पर हम प्रकाश डाल चुके हैं। उससे आपको यह मालूम हो चुका है कि फ्रांस का पतन कैसे हुआ, इङ्गलैण्ड क्योंकर प्रधान हुआ, मित्रदल कैसे बना और परस्पर मारकाट कैसे हुई। हम आपको यह भी दिखला चुके हैं कि जैसे आज का मित्रदल सदा यही कहता रहा है कि वह जर्मनी की जनता का नहीं, जर्मन प्रदेश का नहीं वरन् जर्मन फ़ौज़ीपन का शत्रु है, जर्मन फ़ौजीपन को ही वह नष्ट भ्रष्ट करना चाहता है इसी प्रकार से पिछली शताब्दी में उस समय का मित्रदल फ्रांस के फ़ौजीपन का शत्रु बना था। ऐतिहासिक बातों तथा स्थिति को और भी समझने योग्य बनाने के लिए एक बात रह गई थी, वह यह कि रङ्ग-मंच पर आकर

कैसर ने क्या किया ?

इतना लिख देने से इतिहास के पृष्ठ एक तरह से पूरे हो जायँगे, साथ ही जर्मनी की विचित्र शक्ति और यूरोपीय महाभारत के अनेकों बीजों का आपको पता लग जायगा। बिस्माक ने जो कुछ किया वह पाठकों को विदित है। उसने जर्मनी को बलशाली बना दिया। इटली और आस्ट्रिया उसके मित्र थे। इसी समय में

कैसर राजा हुए।

क़ैसर की शक्ति, उनके स्वभाव, और अपनी इच्छा को कार्य का रूप देने को प्रबल लालसा, तथा मार्गों के रोड़ों को उखाड़ फेंकने की शक्ति का अन्दाज़ा आप इसीसे लगा लीजिये कि सिंहासन पर पैर रखते ही उन्होंने एक मिनट में बिस्मार्क को—जो उस समय में संसार और जर्मनी का प्रधान मनुष्य था—निकाल बाहर किया और बिस्मार्क के किये धरे कुछ न हुआ। फ्रांस अकेला रह गया था, रूस की धाँक जमी हुई थी किन्तु क़ैसर ने रूस की तनिक भी परवा न कर एफ्रिका और एशिया के प्रदेशों को हड़पना शुरू किया। जर्मनी, आस्ट्रिया और इटली का गुट था, कोई राष्ट्र अकेला मुक़ाबले पर आ नहीं सकता था। रूस स्वयम् बढ़ना चाहता था, किन्तु वह अकेला था। उसने तुरन्त फ्रांस को मिलाया। फ्रांस के रुपये से, फ्रांस की सहायता से रूस बलसंचय करने लगा। इधर रूस और फ्रांस में सन्धि हुई उधर

चीन–जापान युद्ध

हुआ। जापान विजयी ठहरा, क्षतिपूर्ति में बहुत सा रुपया चीन को देना पड़ा, साथ ही जापान ने चीन के प्रदेशों पर भी कब्ज़ाकर लिया। मंचूरिया. पोर्टआर्थर पर जापानी झंडा फ़हराने लगा, साथ ही रुपया न अदा होने तक चीन ने We-hai-we वी-हाई वी प्रदेश का दखल जापान को दे दिया। क़ैसर ने देखा संसार में एक प्रतिद्वंदी पैदा हो रहा है और उन्होंने फ्रान्स और रूस को हस्तक्षेप करने के लिए उभारा। मंचूरिया में जापान के प्रधान होने से रूस और फ्रान्स के स्वार्थों को धक्का पहुंचने की सम्भावना थी। पोर्टआर्थर के लिए बहुत दिनों से लालायित रूस जर्मनी का सहारा पाकर तुरन्त तैयार हो गया, फ्रान्स ने भी मित्र का साथ दिया। जर्मन. रूसी और फ़रासीसी राजदूत जापान के प्रधान काउन्ट हेयासी के पास पहुंचे और पहुंच कर उन लोगों ने चीन के प्रदेशों पर क़ब्ज़ा न करने के लिए उनसे कहा। रूसी और फ़रासीसी राजदूत मुलायमियत से बातें कर रहे थे किन्तु जर्मन दूत ने अकड़ कर कहा "यदि तुम नहीं मानते तो रूस, फ्रान्स और जर्मनी की सेनाएँ रणक्षेत्र में आती हैं, चलो मुक़ाबला करो।

जापान का हौसला टूटा,

वह कर ही क्या सकता था ? रूस, फ्रान्स और जर्मनी चीन के मित्र बन बैठे। रूस ने चीन में अपनी रेलें दौड़ाईं, फ्रान्स ने रेल-विस्तार तथा व्यापार के स्वत्व प्राप्त किये। रूस ने कुछ ही समय बाद पोर्टआर्थर और आस पास के समुद्र का

२५ वर्ष के लिए चीन से पट्टा लिखा लिया और मंचूरिया पर कब्ज़ा कर लिया। इङ्गलैंड ने पहिले ही जापानी सेना के हटते ही वी-हाई-वो पर अपना झंडा उड़ा दिया था। जर्मनी को कुछ नहीं मिला, वह अवसर ढूंढ रहा था। चीन के कुछ लोगों ने चीन से यूरोपवासियों को निकाल बाहर करना चाहा। षड़यंत्र रचा गया और बलवा हुआ। जर्मनी ने यूरोपीय राष्ट्रों को उभारा। कैसर ने कहा कि चीनियों ने दो पादरियों की हत्या की है। धर्म की पुकार मची और राष्ट्र चीन पर चढ़ दौड़े। जर्मनी ने कियाचौ पर कब्ज़ा कर लिया किन्तु यूरोपीय राष्ट्रों को यह रुचिकर न था। पूर्वीय संसार में वे जर्मनी का पैर जमना नहीं देख सकते थे। आख़िर में तय यह हुआ कि चीन शांटुङ्ग का जर्मनी को ६६ वर्ष का पट्टा लिख दे और जर्मनी को यह अधिकार होगा कि वह वहाँ अपने क़िले आदि बना ले। कैसर का पैर जमा और आगे बढ़ने की उनको फ़िक्र हुई। चीन में जर्मनी का रंग जम गया, जर्मन व्यापार बढ़ा, जर्मन बैंक चीन में फैलने लगे और चीन की मृत्यु और उस पर अधिकार का दिन कैसर गिनने लगे। किन्तु पड़ोसी जापान मार्ग में कंटक था। कैसर ने जापान को ग्रस्त करना चाहा किन्तु जापानी सैनिकों की वीरता वे चीन-जापान युद्ध में देख चुके थे, साथ ही जापान चीन के समीप होने से युद्ध में जर्मनी से पीछे नहीं पड़ सकता था। इसलिए दूसरे मनुष्य का हाथ उन्होंने सर्प की बिल में छोड़ना चाहा। कैसर ने पीतातंक का रौला मचाया, यूरोपीय संसार से उन्होंने कहना शुरू किया कि जापान की पीली जाति संसार पर—यूरोप पर—कब्ज़ा करेगी, जापान की शक्ति कम करना चाहिये। उन्होंने ज़ार के पास चित्र भेजा जिसमें जापानी सैनिक यूरोपीय राष्ट्रों

पर कब्ज़ा किये बैठे थे। रूस को जापान से भिड़ने के लिए उन्होंने उभारा और ज़ार को वचन दिया कि जब तक वे जापान से लड़ते रहेंगे, जर्मनी, रूस से युद्ध नहीं ठानेगा। एक ओर कैसर यह कर रहे थे दूसरी ओर जापानी सैनिकों को वे युद्ध-कला की शिक्षा जर्मन जनरलों से दिला रहे थे। कैसर को रूस की महती सेना का भय था, उसके कारण वे यूरोप में सहसा हाथ पैर नहीं बढ़ा सकते थे, उधर पूर्वीय संसार में जापान मार्ग में कंटक था। दोनों ही का विनाश वे देखना चाहते थे और उन्होंने दोनों को भिड़ा दिया।

रूस-जापान युद्ध

हुआ। एक ही निशाने में दो बाज़ों को कैसर ने मार गिराया। रूस हार रहा था साथ ही फ्रांस का गला घुट रहा था, क्योंकि फ्रांस का रुपया रूस में बहुत लगा हुआ था। युद्ध जारी रहते और हारने पर वसूली में गड़बड़ पड़ती। फ्रान्स त्रस्त था दूसरे उसका मित्र युद्ध में था। इसी समय में अवसर देख कैसर ने "मोराको" पर निगाह फेरी। कैसर टैंजीर पहुंचे। फ्रांस के प्राणपखेरू बाहर आने जाने लगे किन्तु कैसर ने मोराको पर कब्ज़ा नहीं किया। कैसर ने मुसलमानों को मिलाना चाहा। कैसर मुसलमानों के रक्षक बन बैठे। आस्ट्रिया ने उनका साथ दिया। कैसर इङ्गलैंड को सर करना चाहते थे, फ्रांस को धमकी से अपनी ओर वे मिलाये रहना ही चाहते थे, किन्तु फ्रांस के परराष्ट्र सचिव मि० दलकासे जर्मनी के घोर शत्रु थे, उनके रहते यह संभव न था कि फ्रांस जर्मनी से मिले। कैसर ने मोराको पर कब्ज़ा करने के लिए युद्ध की धमकी दी।

लड़ता कौन ?

रूस जापान में था, इङ्गलैंड के पास सेना नहीं थी, फ्रांस के पास गोला बारूद तैयार न था, फ्रांस बैठ गया। मामला पंचायत में उपस्थित हुआ। कैसर को मोराको की उतनी चिन्ता न थी जितना कि वे फ्रांस को अपने हाथ में करना चाहते थे। उन्होंने कहा कि हम मोराको नहीं चाहते, न हम उसपर कब्ज़ा करेंगे किन्तु हम मि० दलकासे को पसन्द नहीं करते, ये झगड़ालू हैं, फ्रान्स अपना परराष्ट्र-सचिव किसी दूसरे को नियत करे। फ्रांस सस्ता छूटा उसने तुरन्त दलकासे को दुलका दिया। कैसर समझे इससे फ्रांसनिवासियों के हृदय में उन्होंने स्थान पा लिया होगा।

इङ्गलैण्ड को त्रस्त

करने के लिए वे जाल बिछाने लगे। जिस तरह ज़ार के पास उन्होंने चित्र भेजा था उसी तरह से, शान से उन्होंने अपना प्रसिद्ध तार बोअर प्रेसीडेन्ट क्रूगर के पास भेजा। क्रूगर बर्लिन आये। उनकी बड़ी ख़ातिर हुई। कैसर ने उनको खूब मिलाया और वे बोअर जाति की स्वतंत्रता के लिए इङ्गलैण्ड से लड़ने को तयार हुए। फ्रांस ने भी बोअरों का पक्ष समर्थन किया और कैसर ने सहायता देने का वचन दिया। बोयर युद्ध आरम्भ हो गया। इङ्गलैण्ड को सेना और धन की हानि हुई। किसी तरह राम राम करके सन्धि स्थापित हो गई। कैसर का मतलब कुछ निकला किन्त वे सन्तुष्ट न हुए। अब भी इंङ्गलैण्ड उनको पहाड़ दिखाई देता था और उन्होंने नूतन शक्ति-संचय करना शुरू किया।

(अभ्युदय ८ मार्च १९१९)

जर्मनी क्यों नहीं उठा ?

छठा परिच्छेद ।

पाठक पूछ सकते हैं कि जब इंगलैंड, रूस, फ्रांस सभी कमज़ोर हो रहे थे उस समय जर्मनी क्यों नहीं उठा ? इसका उत्तर प्रिन्स वान बूलों के शब्दों में यह है:—

"During those years we were occupied in founding our sea power by building the German navy and even in the event of British defeat in S. Africa it was possible for England to stifle our sea power in the embryo"

अर्थात् उस समय हम लोग (जर्मन) नौ-सेना की तैयारी में लगे हुए थे, और यदि इंगलैंड बोअरों से हार भी जाता तब भी वह हमारी नौ-सेना को गर्भावस्था में ही नष्ट कर सकता था ।

इस तरह से जर्मन एक ओर अपनी नौ-सेना की वृद्धि कर रहे थे और दूसरी ओर से वे रूस, फ्रांस और इंगलैंड को हर तरह से शक्ति और धन से हीन कर रहे थे ।

जाल में टर्की।

किन्तु इतने से कैसर को सन्तोष नहीं हो सकता था। इङ्गलैंड रूपी हाथी हज़ार कमज़ोर होने पर भी उनके लिए बहुत था। इसलिए उसके अङ्ग-प्रत्यंग को काटना उन्होंने निश्चय किया। टर्की के लिए जाल वे सन् ८३ ही में छोड़ चुके थे। उस समय टर्की अपने राज्य में स्थित आरमिनियनों पर बड़ा अत्याचार कर रहा था। इसकी तनिक भी परवा न कर डमसकस से कैसर ने सुल्तान को तार दिया था "सुल्तान और संसार में फैले हुए ३० लक्ष मुसलमानों को यह विश्वास रहे कि हम सदा मुसलमानों के मित्र हैं।"

इसका एकमात्र कारण मुसलमानों को अपने पक्ष में करना था क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्य की छाया में मुसलमानों की एक बड़ी संख्या रहती है सन् ९८ में कैसर ने जेरुसलम और मक्का मदीना की सैर की। यह कष्ट निरर्थक नहीं उठाया गया था। सैर करते समय कैसर ने उन स्थानों को देखा जहां से जर्मन और तुर्की सेना मिश्र और स्वेज़ नहर पर चढ़ सकती थी। सन् ९९ में कैसर ने बगदाद रेलवे की नेह डाली। इस रेल की सहायता से जर्मन सेना बड़ी सरलता से भारतवर्ष में आ सकती थी। कैसर को यह भी आशा थी कि भारतीय मुसलमान और बंगाली उनका साथ देंगे।

यह देखकर कि रूस कमज़ोर हो गया है वह जल्दी खड़े होने का साहस न करेगा कैसर इस प्रयत्न में लगे कि सम्मिलित हंगरी, जर्मनी और टर्की बालकन में प्रधान होजायँ, [illegible]तु कैसर सफल न हुए। बालकन में झगड़ा उठते ही [illegible]ल खड़ा हो गया और तुर्की सेना बड़ी बुरी तरह से हारी.

नहीं तो आज फारस की खाड़ी में जर्मन सेना का होना असम्भव न था।

फ्रांस सर हुआ।

सन् ०५ में कैसर ने मोराको के मुसलमानों को अपनाना चाहा। वे उनके रक्षक बन बैठे। वे समझे थे कि रूस कमज़ोर है और बिना रूस के फ्रांस का हाथ कटा सा है, वह अकेला चूं न करेगा। इस समय भी जर्मन नौ-सेना तैयार न थी इसलिए कैसर खुल्लमखुल्ला लड़ना नहीं चाहते थे। वे कोरी धमकी ही से काम निकालना चाहते थे। उनका मित्र आस्ट्रिया भी उनके साथ खड़ा हो गया। इस समय फ्रांस के परराष्ट्र-विभाग में मि० दलकासे प्रधान सचिव थे। ये जर्मनी के कट्टर शत्रु थे। बस इन्हीं पर कैसर ने हाथ साफ करना निश्चय किया। मोराको का झगड़ा पंचायत में पेश हुआ। इस झगड़े को कैसर ने कई मतलबों से उठाया था, उसका अर्थ यह भी था कि वे देखना चाहते थे कि इङ्गलैंड और फ्रांस की मित्रता कहां तक गाढ़ी है। साथ ही साथ वे फ्रांस को यह भी दिखाना चाहते थे कि इङ्गलैंड केवल फटा बांस रह गया है। पंचायत में आस्ट्रिया के कारण जर्मनी की जीत रही, फ्रांस ने दबकर मि० दलकासे को अलग कर दिया किन्तु वास्तव में पंचायत का फल कैसर के लिए अच्छा नहीं हुआ। इङ्गलैंड और फ्रांस को जर्मनी और आस्ट्रिया की शक्ति मालूम हो गई, और इसका फल यह हुआ कि दोनों की मैत्री गाढ़ी हो गई।

रूस को झिड़को।

कैसर आस्ट्रिया के साथ देने से प्रसन्न हुए और उन्होंने उससे कहा कि समय पड़ने पर तुम्हारी मित्रता हम न भूलेंगे।

सन् १६०८ में आस्ट्रिया ने बोसनिया और हर्जीगोवाइना पर कब्ज़ा कर लिया। सर्विया को यह बहुत बुरा लगा। रूस ने भी कान खड़े किये किन्तु कैसर ने ज़ार को लिख भेजा "हम आस्ट्रिया का साथ देंगे और रूस को पहिले जर्मनी से भिड़ना होगा।" ज़ार ठँढे पड़ गये।

क़ैसर ने युद्ध रोक दिया।

सन् १६११ में कैसर ने अगादिर पर कब्ज़ा कर फिर फ्रांस और इङ्गलैंड में मतभेद कराना चाहा, वे फ्रांस को इस समय दबाना भी चाहते थे। जर्मन जहाज़ 'पैंथर' के कप्तान को जो अगादिर में था, जर्मन रण-विभाग ने यह आज्ञा भी दे दी थी कि युद्ध से मुंह न मोड़ना किन्तु इस समय कैसर ने ही युद्ध को स्थगित कर दिया। कैसर ने अपने जासूस छोड़े। डा० कार्लग्रेव नामक जासूस को यह आज्ञा दी गई कि वह पता लगावे कि फ्रांस, रूस और इङ्गलैण्ड एक दूसरे का कहां तक साथ देंगे। इधर फ्रांस, इङ्गलैंड और रूस के प्रतिनिधि भी इसी सम्बन्ध में बातचीत करनेवाले थे। यह तय हुआ था कि सब लोग किसी न किसी प्रकार से छिपकर मान्टी-कारलो में मिलें। रूसी प्रिन्स एक मामूली आदमी के वेष में पहुँचे। फ्रेंच राजदूत भी पहुंचा और सर एडवर्ड ग्रे भी। इधर जासूस भी खाली नहीं बैठा था। उसने एक सुन्दरी द्वारा रूसी प्रिन्स पर जाल फेंका, प्रिन्स चारा खा गये। सुन्दरी जो कि वास्तव में एक उच्च घराने की कौंटस थी रूसी प्रिंस के घर रहने लगी। उसने सब प्रतिनिधियों की बातों को छिपकर सुन लिया और जासूस को खबर दी। जासूस ने जाकर कैसर को खबर दी कि तीनों राष्ट्र एक

दूसरे का साथ अन्त तक देंगे। कैसर को हानि पहुंचने की संभावना दिखाई दी। उन्होंने तुरन्त उसी जासूस द्वारा 'पेंथर' जहाज़ के कप्तान को यह सूचना भेजी कि युद्ध मत करना, शत्रु अपमान भी करे तो सहन कर लेना; अभी समय नहीं है।
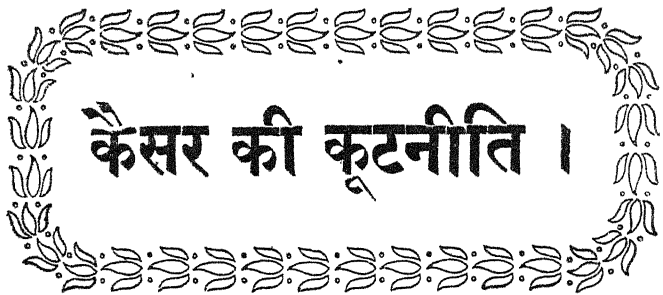
इङ्गलैंड और फ्रांस ने अन्तिम सूचना दी, 'पेंथर' को वे घेर कर खड़े भी हो गये किन्तु उसका कप्तान चुपचाप दुम दबाकर भाग आया। यह सन् ११ की बात है।

यह चाल भी कैसर की उलटी ही पड़ी। फ्रांस और इङ्गलैंड ने देख लिया कि अलग रह कर वे नाचीज़ हैं। तुरन्त दोनों राष्ट्रों में सदा के लिए गाढ़ी मैत्री स्थापित हो गई।

यह सब कुछ हुआ किन्तु फ्रांस को तब भी दबना ही पड़ा। मोराको के मावज़े में उसे काँगो प्रदेश का अधिकतर भाग जर्मनी को दे देना पड़ा। यह जुलाई १९११ की बात है।

(अभ्युदय २ जनवरी १९१९)

कैसर की कूटनीति ।

सातवां परिच्छेद ।
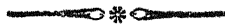
कैसर की कूटनीतियों को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम लोग जर्मन समाज और कैसर को भी समझ लें। बातों को थोड़े में समझा देना सरल काम नहीं है किन्तु जैसा कि एक विद्वान ने कहा है कि किसी मनुष्य को समझने के लिए उसके जीवन के उद्देश्य को जान लेना काफी है। इसी हेतु से हम जर्मन समाज और कैसर के उद्देश्यों का पाठकों को सूक्ष्म में दिग्दर्शन करा देना आवश्यक समझते हैं।

जर्मन समाज का तो कहना है कि 'The King at the head of Prussia, Prussia at the head of Germany, Germany at the head of the world जर्मनसमाज जर्मन साम्राज्य को सर्वोपरि मानता है, उसका कहना है कि राजा

प्रशा का प्रधान है, प्रशा जर्मनी का और जर्मनी संसार का शिरोमुख है। इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए जर्मनसमाज सब कुछ सहने और करने को उद्यत है। कैसर का कहना है कि "Nothing must be settled in this world without the intervention of Germany and of the German Emperor" अर्थात् इस दुनिया में कोई बात बिना जर्मनी और कैसर की राय के तै नहीं होनी चाहिये।"

उपर्युक्त बातों से पाठक समझ सकते हैं कि जर्मन समाज और कैसर क्या चाहते हैं। इमिलीरेक नामक कैसर के विरोधी और शत्रु का कथन है कि यूरोपीय राजनीति का कैसर के समान संसार में कोई अन्य ज्ञाता नहीं है। प्रत्येक यूरोपीय राष्ट्र और जाति के सम्बन्ध में उन्हें छोटीसी छोटी बात का भी ज्ञान है, वे उनका इतिहास जानते हैं, उनकी भाषा जानते हैं और कोई भी यूरोपीय शासक इस जानकारी में उनकी बराबरी नहीं कर सकता।" कैसर के सम्बन्ध में इतना ही कहकर हम अपने विषय पर आते हैं।

पिछले परिच्छेद में हमने १६११ तक की कैसर की कूटनीतियों का वर्णन किया था। हमने दिखाया था कि कैसर ने रूस, फ्रांस और इङ्गलैंड को किस तरह से पछाड़ा था और इस कारण रूस, फ्रांस और इङ्गलैंड किस तरह एक हो गये थे। कैसर से ये बातें छिपी न थीं। उन्होंने भी समझ लिया था कि उनकी चालों का फल क्या हुआ है और यही समझकर वे भविष्य में शान्ति ही द्वारा अपना अभीष्ट साधन करना चाहते थे।

कैसर ने १६११ में देख लिया था कि उनके विरुद्ध एक शक्तिशाली गुट्ट जुट गया है। इस गुट्ट को आपस में लड़ाना,

उसे कमज़ोर करना और छिन्न भिन्न करना कैसर का प्रधान लक्ष्य हो गया। बोसनिया आदि पर आस्ट्रिया का कब्ज़ा होते ही उन्होंने आस्ट्रिया को साम्राज्य विस्तार के लिए उत्तेजित किया। आस्ट्रिया को उन्होंने सलाह दी कि सेलोनिका तक उसका अधिकार फैलाना उसके लिए बहुत आवश्यक है। इधर कुस्तुन्तुनिया से भी उन्होंने नाता जोड़ना शुरू कर दिया था। वे टर्की, छोटे छोटे स्लाव राष्ट्रों और बालकन प्राय-द्वीप के राष्ट्रों में अपना प्रभाव फैलाना चाहते थे। उन्होंने रूमानिया के राजा को, जिसकी रगों में जर्मन खून बह रहा था, मिला लिया था। उसी को राज़ी कर लेने पर उन्होंने बर्लिन से फ़ारिस की खाड़ी के मुहाने तक रेल फैलाने का प्रयत्न किया था। इन सब का एकमात्र कारण यह था कि वे यह नहीं चाहते थे कि रूस का ज़ोर बालकन प्रायद्वीप में हो और कुस्तुन्तुनिया में उसका झंडा फहराये। रूस से जर्मनी को ऐसे ही कम अंदेशा न था यदि जर्मनी के दक्षिण दिशा में भी रूस प्रधान हो जाता तो फिर जर्मनी चारों ओर से घिर जाता और उसको हाथ पैर निकालना मुश्किल हो जाता। इसलिए टर्की को मित्र बना रूस के मार्ग में अड़चन डालना ही कैसर ने युक्तियुक्त समझा। रूस शताब्दियों से कुस्तुन्तुनिया को अपनाना चाहता था। कैसर की यह लीला देख उसकी निद्रा भंग हुई और वह भी सचेत हो गया। क्रीमिया के युद्ध में टर्की का पक्ष इंगलैंड ने लिया था और इसमें सन्देह नहीं कि इंगलैंड की ही कृपा के कारण टर्की यूरोप में उस समय बना रह गया था किन्तु रूस को अब यह विदित हो गया कि इंगलैंड और जर्मनी संसार साम्राज्य के प्रतिद्वन्दी हैं ऐसी अवस्था में इंगलैंड को कभी यह

पसन्द न होगा कि जर्मनी का प्रभावक्षेत्र बढ़े और टर्की में वह प्रधान हो । साथ ही साथ स्लाव साम्राज्य का स्वप्न देखने-वाले रूस के लिए यह जीवन और मरण का प्रश्न था कि दक्षिण-पूर्वीय यूरोप में प्रधानता किसकी रहे ? ट्यूटन्स या जर्मन लोगों की अथवा स्लावों या रूसियों की ? कैसर भी इन बातों को भले प्रकार समझते थे। उनकी चालें रूस को नहीं सोहाती थीं किन्तु वे करही क्या सकते थे ? उनके साम्राज्य के लिए भी दक्षिण-पूर्वीय यूरोप में किसी बैरी का प्रभाव न बढ़ने देना जीवन मरण का प्रश्न था । उन्हें यह भी मालूम था कि बालकन राष्ट्रों में रूस का प्रभाव बहुत फैला हुआ है । धीरे २ उस प्रभाव के जाल को उन्होंने छिन्न भिन्न करना आरम्भ किया । कैसर ने जासूस छोड़े, इन लोगों ने अपना अड्डा रोम, बेलग्रेड, बलगेरिया आदि में जमाया ।

कैसर को जासूसों ने खबर दी कि सर्विया को रूस की हर प्रकार से मदद है । रूस के धन ही से सर्विया का कारो-बार अधिकतर चल रहा है । रोम में फ्रेंच और जर्मन जासूसों से मुठभेंड़ भी हो गई । कैसर को यह मालूम हुआ कि रूस बालकन में सर्वप्रधान हो रहा है। कैसर ने बलगेरिया को मिलाना आरम्भ किया और हर तरह से उसकी सहायता कर उसे अपने चंगुल में कर लिया । जुलाई १६११ में अगादिर का मामला हुआ था उसके बाद ही कैसर ने उत्तरीय एफ्रिका में कुछ प्रदेश लेने की इच्छा की थी । कारण यह था कि मोराको पर फ्रांस का अधिकार होगया था । टर्की उनकी ओर था ही, वे यह चाहते थे कि ट्रिपली पर उनका अधिकार जम जाय ।

इटली बैठा बैठा इन बातों को देख रहा था । उसने देखा

कि संसार में जो हाथ पैर चलाना नहीं जानते उनकी कहीं पूछ नहीं होती और न उन्हें संसार में सफलता ही प्राप्त होती है। नवम्बर १९११ में उसने टर्की से युद्ध छेड़ ही दिया। यह सर्वथा मित्रत्रय के लिए हानिकारक था क्योंकि टर्की जर्मनी का मित्र था किन्तु राजनीति में उदारता और कोरे भावों का आदर करना कोरी मूर्खता है। जर्मनी खुल्लमखुल्ला न टर्की का ही साथ दे सकता था और न इटली का। वह सन मार चुप हो गया। हां ऊपर से कभी कभी वह इटली के पक्ष में हूं हां कर दिया करता था। अन्त में इटली ने ट्रिपली पर अधिकार जमा लिया और कमज़ोर राष्ट्रों के हिमायती इङ्गलैंड को, जो आज उदारतावश बेलजियम के लिए लड़ रहा है, यह कहकर चुप हो जाना पड़ा कि "इटली को साम्राज्य-विस्तार का अवसर कभी नहीं मिला था, अब भाग्य से उसे अवसर मिल गया तो अन्य राष्ट्रों को उसके मार्ग में न खड़ा होना चाहिये"। फ्रांस और इङ्गलैण्ड के नेत्र के सामने जर्मनी को शक्ति फिर नाच गई, और इस कारण नवम्बर २२, १९१२ को फ्रांस और इंगलैण्ड में एक सन्धि स्थापित हुई। पुराने घावों को भूलकर दोनों हृदय से एक हुए और यह तय हुआ कि यदि दोनों में से किसी राष्ट्र पर कोई अन्य तीसरा राष्ट्र बिना किसी कारण के आक्रमण करे तो दोनों राष्ट्र तुरन्त मिलकर यह तय कर लें कि वे मिलकर काम करेंगे कि नहीं और यदि मिलकर कार्य करेंगे तो कैसे? यह भी तय हुआ कि यदि युद्ध करना तय होगा तो दोनों राष्ट्रों के युद्ध-विभाग तुरन्त मिलकर कार्यशैली निश्चित कर लेंगे।

यह समय वह था जब बालकन प्रायद्वीप के राष्ट्र कुस्तुन्तुनिया पर मिलकर चढ़ रहे थे। जर्मनी हृदय से चाहता

था कि टर्की की विजय हो किन्तु भाग्य ने उसका साथ न दिया। मित्र-राष्ट्रों की जीत हुई और मालूम यह हुआ कि संसार से टर्की का अस्तित्व मिट जायगा।

तक़दीर ने धोखा दिया इससे क़ैसर हार नहीं मान सकते थे। उन्होंने तदबीरों के द्वारा तक़दीर को फेरने का प्रयत्न किया। उन्होंने बलगेरिया की पीठ ठोकी, खूब उसकी प्रशंसा की और उसके दिमाग में यह भर दिया कि उसके प्रयत्नों से ही विजय हुई है। बलगेरिया का दिमाग सातवें आसमान पर चढ़ गया और हिस्सा बांट के समय लड़ाई खड़ी हो गई। फिर युद्ध हुआ, क़ैसर ने टर्की को उत्तेजित किया, उसे भी मौका मिला, उसने फिर अपनी सत्ता बना ली। इधर अन्य राष्ट्र सब थोड़ा बहुत पाकर संतुष्ट हुए। इस समय भी झगड़ा होते होते बच गया। सर्विया ने अलबानिया पर कब्ज़ा करना चाहा, उसने एड्रियाटिक तट पर कुछ बन्दरगाहों के पाने की भी लालसा प्रगट की। यह आस्ट्रिया के लिए ज़हर होता, उसने अड़ङ्गा लगाया। रूस ने सर्विया का पक्ष लिया। यह मालूम हुआ कि यूरोपीय महाभारत का सूत्रपात होता है क्योंकि जर्मनी आस्ट्रिया का साथ अवश्य देता किन्तु लन्दन में एक कांग्रेस बैठी और समझा बुझाकर झगड़ा शान्त कर दिया गया। दशा को देख कर सब राष्ट्रों पर यह विदित होगया कि झगड़ा केवल कुछ समय के लिए रुक गया है, और युद्ध शीघ्र ही अवश्य होगा। बस सेना की तैयारी सब राष्ट्रों ने आरम्भ करदी। १९१२ में जर्मन आर्मी बिल पास होगया। यह केवल रूस को धमकी देने के लिए पास किया गया था जिसमें रूस फिर आस्ट्रिया और सर्विया के मामले में हस्तक्षेप करने का साहस न करे। फ्रांस

में भी तैयारी शुरू हुई। ४ मार्च को फ्रांस में तीन वर्ष की सैनिक सेवा को अनिवार्य करने की बात उठी। जर्मन बिल पास भी न हो पाया था कि फ्रांस के प्रधान सचिव ने १५ जून को यह घोषित किया कि वे अपने अधिकार से उन लोगों को जिनका दूसरा वर्ष सेना में पूरा हो रहा है अभी सेना में रक्खेंगे। १६ जून को फ्रांस में यह पास हुआ कि २१ वर्ष की अपेक्षा २० वर्ष के होते ही युवक सेना में भर्ती किये जायँ। इसके कुछ ही सप्ताह पहिले बेलजियम में सैनिक-सेवा अनिवार्य करदी गई थी। ८ जुलाई को रूस में ड्यूमा ने गुपचुप एक सेना का बजट पास करा दिया और बजाय ३ वर्ष के सवा तीन वर्ष तक सैनिक सेवा की अवधि निश्चित हो गई। इङ्गलैण्ड में भी नौ-सेना की वृद्धि होने लगी। १९१३ तक में सैनिक तैयारी का ज्वर बहुत बढ़ गया। उस समय इङ्गलैण्ड ने यह प्रस्ताव किया कि थोड़े दिन के लिए नौ-सेना की तैयारी सब राष्ट्रों की राय से बन्द की जाय। जर्मनी की ओर से कहा गया कि सरकारी तौर से लिखा पढ़ी होने ही पर प्रस्ताव पर विचार किया जा सकता है अन्यथा नहीं।

बात यह थी कि जर्मनी उस समय नौ-सेना की वृद्धि के लिए जी जान से प्रयत्न कर रहा था, काम बन्द कर देने से उसकी नौ-सेना इङ्गलैण्ड की नौ-सेना से १९१५ में बढ़ नहीं सकती थी। इधर यह आवश्यक था कि नौ-सेना १९१५ तक इंगलैण्ड की नौ-सेना से बढ़े नहीं तो कम से कम बराबर तो अवश्य रहे।

बालकन युद्ध के फ़ैसले से कोई भी प्रतिद्वन्द्वी सन्तुष्ट नहीं था। रूस मन ही मन कुढ़ा हुआ था क्योंकि उसके

सर्विया की इच्छा पूरी नहीं हुई थी। इधर जर्मनी का भी मन भरासा था क्योंकि आस्ट्रिया सोलंकिया तक नही पहुँच पाया था और रूस और सर्विया उसके मार्ग में अड़चन हो रहे थे। इनके सिवा बालकन प्रायद्वीप के भी सभी राष्ट्र असन्तुष्ट थे विशेष कर सर्विया ते आस्ट्रिया से वैर चुकाने की कसम सा खाये बैठा था। अन्त में रूस और सर्विया एक ओर और दूसरी आर जर्मनी और आस्ट्रिया इस प्रयत्न में लगे कि एक दूसरे को कैसे दबावें।

इसी समय में, पोलैंड में रूस ने रेल की लाइनों का जाल छोड़ना आरम्भ किया। यह रेलें इस तरह से तैयार होने लगीं कि रूसी सेना बहुत थोड़े समय में एक साथ ही चारों ओर से जर्मन सीमा पर पहुंच सकती। जर्मनी के भय के लिए एक और बड़ा कारण उपस्थित हुआ। इसी समय में २८ जून १९१४ को आस्ट्रिया के युवराज की हत्या हुई। इसके बाद जो कुछ हुआ और युद्ध कैसे आरम्भ हुआ सो पाठकों से छिपा नहीं है।

(अभ्युदय ९ जनवरी १९१५)

संसार का राजनैतिक आकाश।

आठवां परिच्छेद

"अफ़सरों और क़ानून की इज्ज़त" का फ़िकरा यूरोप में वही काम दे रहा है जो काम भारत में "शान्ति, व्यवस्था, और क़ानून" के मसले से लिया जाता है। मांटेगू-चेम्सफ़ोर्ड सुधार में कितनी ही बातें इसी मसले की दोहाई देकर हम लोगों से दूर रक्खी गईं और इसी मसले के नाम पर पंजाब में जो हुआ वह किसी से छिपा नहीं। यूरोप के हीन पुरुषों या कमज़ोर जातियों को भी 'अफ़सरों और 'क़ानून की इज्ज़त" के मसले की चक्की पीसे डाल रही है। रूस में प्रजा ने निरंकुश शासन को नष्ट किया, स्वतंत्रता की बयार स्वतंत्र रूप से वहां बहने लगी किन्तु यह हवा दूसरों को पसन्द न थी। दूसरों के मामलों में हस्तक्षेप करने का जिन्होंने ठेका ले रक्खा है, जो दिन रात इसी चिन्ता में व्यस्त रहते हैं कि दूसरे अपना प्रबन्ध

कैसा करते हैं, चढ़ दौड़े और रूस को सत्यानाश में मिला देने के लिए इन दोस्तों ने कोई बात उठा न रक्खी। सैनिक और मज़दूर अच्छे नहीं, छोटे आदमी हैं इसलिए उनकी कौंसिल नष्ट की गई, सोवियट शासन अच्छे नहीं इसलिए उनको सहारा नहीं दिया गया, साम्यवादी बुरे हैं इसलिए उनसे सम्बन्ध रखना, उनके शासन को स्वीकार करना ठीक नहीं, बोलशविक नीचातिनीच हैं, वे दुष्ट हैं, पाजी हैं इसलिए उनपर चढ़ाई कर देना चाहिये। कहा जाने लगा कि नम्र साम्यवादी अच्छे हैं उनको सहायता देनी चाहिये किन्तु उनके नेता मि० केरन्सकी भी एक तरह से व्यवहारिक रीति से इङ्गलैण्ड में नज़रबन्द हैं। पूर्वीय रणक्षेत्र की रक्षा की अब विशेष आवश्यकता नहीं, साइबीरिया में जर्मन सेना से लड़ना भी नहीं है किन्तु रूस पर चढ़ाई जारी है। पेट्रोग्राड पर चढ़ाई कर देने की भी चर्चा हो रही है। सुनते हैं कि बोलशविकों पर चढ़ाई होगी किन्तु हम समझते हैं कि सोवाइट मिट्टी में मिलाये जायँगे और काले महासागर की ओर से चढ़ाई होगी। एक ओर यह हो रहा है दूसरी ओर पुराने निरंकुश रूस के अधिकारी फिर प्रधानता प्राप्त कर रहे हैं। मि० केरन्सकी रूस नहीं जा सकते किन्तु मि० शेजनाफ़ युद्ध-काल के पर‌राष्ट्र-सचिव या यों कहना चाहिये कि १९१४ के युद्ध करने या कराने वाले दल के अग्रणी साइबीरियन सरकार के फिर परराष्ट्र-सचिव हो गये हैं। इतना ही नहीं मित्रदल उनको मानता भी है।

जर्मनी की दशा

भी ऐसी ही है। रूसी विप्लव की भूलों से बचता हुआ जर्मनी सीधा खड़ा हो जाना चाहता है किन्तु संसार के ठेकेदारों को

यह पसन्द नहीं। उसके मार्ग में एक न एक अड़चनें डाली जा रही हैं और ऐसे ही ईश्वर की बड़ी ही कृपा है तो जर्मनी जाल से निकल सकता है। जर्मनी के लिए एक भी अच्छा शब्द कहनेवाला, उसको उत्साहित करनेवाला उसे सहारा देनेवाला इस समय संसार में कोई नहीं। यदि संसार दूर से तमाशा ही देखता रहा तो जर्मनी की भी वही दशा होगी जो रूस की हुई किन्तु इसकी फ़िक्र किसको है। मि० लायड जार्ज ने गिल्डहाल में वक्तृता देते हुए जर्मनी के विधाताओं के पतन पर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की, साथ ही साथ उन्होंने उसी ज़बान में जनता को भी खरी खोटी सुना दी। जर्मन विप्लव का उन्होंने स्वागत नहीं किया न यही कहा कि जर्मन जनता ने बड़ा भारी काम किया। मि० चर्चिल को रोना यह है कि शत्रु देशों में "अफ़सरों और क़ानून की इज़्ज़त नहीं रही।" मि० चर्चिल को नींद हराम हो गई है और वे कहते हैं कि इस दशा को सुधारने का उत्तरदायित्व विजयी मित्र-दल के राष्ट्रों पर है। सीधी भाषा में मि० चर्चिल की इच्छा है कि मित्रराष्ट्रों को सेना सहित तैयार रहना चाहिये और विप्लवों बलवों आदि का अन्त करना चाहिये।

मध्य यूरोप

"अन्न" के नाम पर पीसा जा रहा है। जनता भूखों मर रही है। अन्न का भीषण अकाल वहां पड़ रहा है, बाहर से कहीं से मित्र-दल की कड़ी देख-रेख के कारण गल्ला पहुंच नहीं सकता। भूख से बेबस बनाये जाकर वे शर्तों को मानने पर विवश किये जानेवाले हैं। आस्ट्रिया के निवासी जर्मन, साम्राज्य में मिलना चाहते हैं इससे जर्मनी और भी शक्ति-

शाली हो जायगा यह इङ्गलैण्ड और फ्रान्स को पसन्द नहीं और इसलिए घिराव जारी है। संसार का नियम है कि शत्रु के अस्त्र रखते ही विजयी का यह कर्तव्य होता है कि घेरा उठा दे और शत्रुजनता को अन्न पहुँचावे जिसमें वह भूखों न मरे। जर्मनी के बिस्मार्क ऐसे कठोर-हृदय शासक ने भी फ्रान्स के साथ यही किया था किन्तु आज फ्रान्स यह करने को तयार नहीं और ससार में फ्रान्स सहृदय प्रसिद्ध है और जर्मनी क्रूर। आस्ट्रो-जर्मनों से कहा जा रहा है कि जर्मन साम्राज्य में सम्मिलित न होने का वचन यदि वे दे दें तो उनको अन्न दिया जायगा। जेचोस्लाव-दल ऐसा कह रहा है और कहा जाता है कि मित्रदल को सलाह से यह सब हो रहा है।

हंगरी

की दशा और भी खराब है। मित्र-दल दलबल सहित चढ़ जाने की धमकी दे रहा है। हंगरी की जनता के पास लड़ाई का सामान नहीं। हंगरी निवासियों से, सुनते हैं, कहा जा रहा है कि यदि सोवियटसभा आदि को नष्ट-भ्रष्ट कर दो तो आक्रमण न किया जायगा। एक ओर दशा यह है दूसरी ओर बुधापेस्ट की सेन्ट्रल सोवियटसभा ने रोमानियनों, ज़ेचो-स्लावों और जूगो-स्लावों के प्रति स्वरक्षा के निमित्त युद्ध की घोषणा कर दी है। रोमानिया ने भी चढ़ाई कर दी है। वियना की दशा अन्न के बिना शोचनीय है। वहां गड़बड़ भी शुरू हो गई है। लोगों ने पार्लामेन्ट के भवन में आग लगा दी थी। तत्व यह है कि मध्य यूरोप की दशा बहुत ही हीन है। सफलता जीवन पर निर्भर है, जीवन अन्न पर और अन्न मित्र-

दल की कृपा प्राप्त करने पर, जिसका प्राप्त करना कठिन है। क्रान्ति इस तरह से रूस, जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी, बलगेरिया आदि में उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त कर रही है। इसका नतीजा यह होगा कि यूरोप में राजाओं की कमी होगी और राष्ट्रों में प्रजातंत्र स्थापित होंगे। इसका फल होगा कि क्रान्ति संसारव्यापिनी होगी। अभी ही से आस्ट्रेलिया, दक्षिण एफ्रिका, कैनाडा आदि से बोलशविज़्म के प्रचार की ख़बरें आने लगी हैं, कहीं कहीं उपद्रव भी—यद्यपि अभी नाममात्र ही को—शुरू हो गये हैं। असल में बात यह है कि जनता शासक-समाज याने अमीरों के शासन से त्रस्त है और ग़रीब अपना प्रबन्ध अपने हाथों में लेना चाह रहे हैं। उन लोगों ने अपना सर उठाया है और धनी यह चाहते नहीं कि उनकी विजय हो। इङ्गलैण्ड या मित्रदल का कोई राष्ट्र रूस से सन्धि करना गौरव की बात नहीं समझता क्योंकि रूस का शासन साधारण मनुष्य, अपने हाथ से अपनी रोटी कमानेवाले कर रहे हैं। हमको यह भी सन्देह हो रहा है कि

जर्मनी से सन्धि

जो होगी वह शुभ फल की देनेवाली न होगी। उधर ज्योंही यह शक़ हुआ था कि जर्मनी में भी बोलशविज़्म का दौरदौरा होना चाहता है, मित्र-दल घबरा उठा था और किसी तरह तुरन्त सन्धि कर लेने को तैयार था। 'वेस्टमिनिस्टर गज़ट' के एक प्रधान संवाददाता ने यह ख़बर दी थी कि सन्धि की शर्तें अब ऐसी रक्खी जायँगी जिनको जर्मनी तुरन्त स्वीकार कर ले। किन्तु वह हुआ नहीं। फ़ान्स, जर्मनी के नाम उधार खाये बैठा है, वह उसे हुंजपुंज कर ही

छोड़ना चाहता है। कहा जाता है और कुछ अंशों में यह सच भी है कि जर्मनी के घर में सब ठीक है, उसे विशेष हानि नहीं पहुंची है, उसके कल कारखाने सब ज़ोरों में काम कर रहे हैं, संगठन भी पूरा है, सन्धि होते ही कुछ ही समय में व्यापार-व्यवसाय और विद्या-बुद्धि से वह ज्यों का त्यों हो जायगा, सशक्त हो जायगा, फ्रान्स तथा अन्य देश यह कर नहीं सकेंगे और उस दशा में जर्मनी बलवान हो निर्बलों को कुचल कर शीघ्र ही बदला चुकावेगा। फ्रान्स की दलील यही है और इसीलिए वह जर्मनी से कड़ी से कड़ी शर्त करने पर तुला हुआ है। इस समय जर्मनी में कोई पूर्ण रूप से संगठित शासन नहीं है, अन्न के अकाल से तथा घिराव के कारण माल के आ जा न सकने के कारण जर्मनी बहुत कमज़ोर है, साथ ही घर में फूट भी है। इन सब बातों को ख्याल में रखकर यह समझा जाता था कि वह किन्हीं शर्तों पर भी सन्धि कर लेगा क्योंकि वह बेबस हो रहा है किन्तु बात यह नहीं रही। जर्मनी ने अपना स्वर ऊँचा किया है और वह साफ साफ कह रहा है कि शर्तें यदि उचित न होंगी तो सन्धि न होगी। यही खबर घबरा देने के लिए काफी थी किन्तु इसे लोग धमकी समझ सकते थे, कह सकते थे कि यह गिदड़भपकी है किन्तु अब यह और भी भीषण समाचार मिला है कि जर्मनी और रूस में सन्धि स्थापित हो गई। शर्तें यह हैं कि जर्मनी मित्रदल से सन्धि न करेगा और आवश्यकता पड़ने पर रूस २० वर्ष तक जर्मनी को खाद्य-वस्तुओं और सैनिकों की सहायता देगा। यदि यह सत्य है तो यह बहुत भयङ्कर बात हो गई है। यदि रूस और जर्मनी एक हो गये तो रूस, जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी, बल्गे-

रिया और टर्की का एक ज़बर्दस्त दल तैयार हो जायगा और बोलशविकों, सोवियटों या क्रान्तिकारी राष्ट्रों की अन्य राष्ट्रों से मुठभेड़ होगी। एक ओर यह है दूसरी ओर यह भी खबर है कि जर्मन प्रतिनिधि वार्सैल्स आ रहे हैं, सन्धि-पत्र पर वे हस्ताक्षर भी करेंगे। सन्धि हो या नहीं किन्तु यह निश्चय सा प्रतीत होता है कि युद्ध का युग अभी समाप्त नहीं हुआ है। संसार में भीषण क्रान्ति की लहर बहती दिखाई दे रही है, कोई देश नहीं, कोई महाद्वीप नहीं जहां यह फैल न रही हो। इसका फल क्या होगा, भविष्य के गर्भ में छिपा क्या है यह निकट भविष्य में मालूम होगा। हम इतना ही कह सकते हैं कि संसार का राजनैतिक आकाश इधर कुछ वर्षों तक स्वच्छ तथा निर्मल नहीं दिखाई देता और यह निर्मल उसी दिन होगा जिस दिन संसार के सभी देशों के शासन का भार उन देशों के ग़रीब और परिश्रमी निवासियों के हाथ में ही रहेगा।

(अभ्युदय ३ मई १९१९)

दूसरे महाभारत की तैयारी।

लाठी के बल सन्धि।

नवां परिच्छेद।

मि० लायड जार्ज ने कुछ दिन हुए ठीक ही कहा था कि He feared reaction more than Bolshevism उनको बोलशविज़्म की अपेक्षा प्रतिक्रिया से अधिक भय मालूम होता है। वे समझते थे कि बोलशविज़्म से नहीं वरन् प्रतिक्रिया से यूरोप का सत्यानाश होगा। बात कुछ ऐसी ही होती नज़र आ रही है। प्रत्येक मिनट जो कुछ यूरोप में हो रहा है वह इसी धारणा को पुष्ट कर रहा है कि युद्ध इसी युद्ध के अन्त से या सन्धि के हो जाने से समाप्त न हो जायगा। मालूम यह पड़ रहा है कि अभी यूरोप में कुछ और भीषण परिवर्तन होंगे। यूरोप, अब पुराना यूरोप जैसा कि पुराने राजनीतिज्ञों को वह दिखाई देता था, नहीं रहा। यह सच है कि यूरोप का महाद्वीप अब भी वही है, यूरोपीय

जनता भी बहुत सी अब तक वही है किन्तु इसके साथ ही साथ यह भी सच है कि यूरोप का पुराना कूटनीति का स्वरूप पूर्ण रूप से नष्ट हो गया है।

इसका संगठन, राइन नदी से प्रशान्त महासागर तक, उत्तरी समुद्र से मुस्लिम साम्राज्य तक, नष्ट-भ्रष्ट हो गया है और साथ ही छोटे छोटे, द्वितीय और तृतीय श्रेणी के संगठन जो इसपर निर्भर थे और जिनका यह स्रोत था अपने अपने अस्तित्व को खो बैठे हैं। यूरोप को एक नूतन संगठन की आवश्यकता है। आवश्यक यह है कि राजनैतिक, सामाजिक और औद्योगिक क्षेत्रों में नूतन बीज वपन किया जाय, नूतन नियम बनाये जायँ और नूतन स्तम्भों पर यूरोपीय भविष्य की नीव डाली जाय। इसी पर संसार की भावी-शान्ति, व्यवस्था और सुरक्षा स्तम्भित है। किन्तु यह होता दिखाई नहीं देता। हम देख रहे हैं कि पुराने राजनीतिज्ञ उन्हीं दृष्टियों से कार्य-क्षेत्र में काम कर रहे हैं जिनको लेकर वे पैदा हुए थे। इस नूतन संस्कार के ज़माने में भी कूटनीति, स्वार्थ, साम्राज्य-विस्तार, दम्भ और अनुदारता के उन्हीं सिद्धान्तों से वे प्रेरित हैं जिनके कारण संसार को यह भीषण महाभारत देखना पड़ा। युद्ध का उद्देश्य कम से कम कहा जाने को यह था कि संसार से जर्मन फ़ौजीपन का नाम उठा दिया जाय और न्याय को शक्ति पर प्रधानता दी जाय। जर्मन फ़ौजीपन का अस्तित्व स्थूल दृष्टि से और स्थूल रूप में संसार में नहीं रहा किन्तु हमको इसके कहने में संकोच नहीं कि जर्मन फ़ौजीपन छायारूप से या भावरूप में अब भी जीवित है और सन्धि-परिषद् में एकत्रित मित्र-दल के प्रतिनिधि सन्धि की शर्तों को जर्मन फ़ौजीपन के सांचे में ही

ढाल रहे हैं। अब वे उन गुप्त सन्धियों का सहारा ले रहे हैं जो १९१५—१६ में हुई थीं, जब कि वे समझे थे कि वे सहज में जर्मनी पर विजय प्राप्त कर लेंगे और यूरोप अपने पुराने रास्तों पर चलता रहेगा। उन्होंने यह नहीं समझा कि सन्धि होने के समय तक यूरोपीय जनता का अस्तित्व एक बार डावाँडोल हो उठेगा और इसका फल यह होगा कि क्रान्ति की अग्नि की चिनगारियां सभी राष्ट्रों में इधर उधर ढेरों में पड़ी दिखाई देंगी। जो घटनायें घटी हैं उनसे यह प्रत्यक्ष है कि यूरोप में जर्मन् फ़ौजीपन या उसका किसी प्रकार का छाया शरीर स्थायी जीवन नहीं लाभ कर सकता। मित्रदल एक भीषण अत्याचारमय प्रणाली को नष्ट करने के लिए उठा था। उसे सफलता प्राप्त हुई। पाशविक शक्ति संगठन, साम्राज्यवाद और निरंकुश उत्तरदायित्वहीन शासन का अन्त हो गया। सत्यानाश करने के प्रयत्न का फल सत्यानाश हुआ है, और इस सत्य से हम लोग अपनी आखें नहीं फेर सकते। शेष जो रह गया है वह और कुछ नहीं, केवल भग्नावशेष हैं, संभावनाएँ हैं, बहुत दिनों से त्रस्त नवजीवन की आशा-लताओं का पनपना है; पुरानी आशाओं का बन्धन मुक्त होना है; पुराने अत्याचारों का बदला चुकाना है और असीम आन्दोलन और गड़बड़ का होना है। चारों ओर Chaos उलट-पलट, अंधेर-खाता और भीषण गड़बड़ी है। वह भयानक है, हानिकर है, भयावह है, कदाचित् छूतमय और छूत से फैलनेवाला है और नितान्त बेचैनी फैलाने वाला है। किन्तु एक वस्तु को अच्छी तरह से सब कुछ जानते हुए और होश में होते हुए ध्वंस कर हम विध्वंस को देखते हुए चुप नहीं बैठ सकते और न यह कहने से काम ही

त्रल सकता है कि यह भयावह है, बड़ी गड़बड़ी है, जान आरिज़ है। यूरोप का मध्य भाग घरिया में गल रहा है, यूरोपीय शरीर का हृदय बुरी दशा में है। खून पहुंचाने वाली रगें कट गई हैं, हाथ पैर में लकवा हो गया है, अवयव सब बेकाम हैं, और इन सब के ऊपर शरीर को स्वस्थ रखने के लिए पोषक खाद्य-पदार्थ भी नहीं रहे हैं। यूरोप की दशा सोचने ही के योग्य है। चार प्रधान संगठन और कितने ही छोटे बड़े उलट पलट हो गये हैं। करोड़ों मनुष्य शासन और व्यवस्था से हीन हैं। किसी प्रकार का संगठन शेष नहीं रहा है और शरीर और आत्मा को साथ रखने के लिए खाद्य-वस्तुओं का भी लाला पड़ रहा है।

जनवरी १९१८ की सन्धि।

१९१७-१८ के जाड़े के दिनों में ही यूरोप के कुछ दूरदर्शियों ने इस अवस्था का अनुमान कर लिया था। यह भी छिपा नहीं है कि मार्च १९१८ में एक तरह से युद्ध समाप्त ही हो चुका था। वसन्त समय के आक्रमण से त्रस्त होकर फ्रान्स निर्जीव हो गया था। जुलाई में जर्मन रैशटाग में भी प्रजा के बहुसंख्यक प्रतिनिधियों की बात सर्वोपरि मानी जाय (Majority Resolution) यह प्रस्ताव पास हो गया था। अगस्त मास में पोप ने सन्धि और शान्ति के लिए अपील की थी। स्टाकहाल्म में प्रतिनिधि भी एकत्रित होनेवाले थे। रूस में केरन्सकी को असफलताओं का स्वागत करना पड़ रहा था, फ्रान्स में परशिङ्ग बिना सेना के जनरल रह गये थे। यह कहा जाने लगा था कि अब तैयारी इटैलियन रणक्षेत्र की होगी। मध्य यूरोप के राष्ट्रों में क्रान्ति की चिनगारियां उड़ती नज़र

आ रही थीं। प्रजाबल इतना ज़बर्दस्त हो गया था कि सम्राट् चार्ल्स और काउन्ट ज़र्निन का हृदय दहल गया था। दिसम्बर आते आते सन्धि की अभिलाषा सब देशों में ज़ोरों से फैल गई थी। युद्ध से लोग घबरा और ऊब गये थे। जनरल स्मट्स, काउन्ट मेन्सडार्फ़ से मिलने के लिए स्विट्ज़रलैण्ड गये थे, मि० लायड जार्ज और लार्ड मिलनर रूस को अपनी क़िस्मत पर छोड़ देने को तैयार थे और लार्ड लैन्सडाउन ने साफ़ शब्दों में यह घोषणा की थी कि यदि पुराने यूरोप (वर्तमान सभ्यता) का अस्तित्व बनाये रखना है तो तुरन्त सन्धि होनी चाहिये। इन लोगों ने पुराने यूरोप के अस्तित्व के लिए यह अन्तिम प्रयत्न किया था और इस प्रकार से यूरोप को ये लोग क्रान्ति से रक्षा करना चाहते थे। यूरोपीय महाभारतीय नाटक का पहिला दृश्य यह था। यवनिका के उठते ही रंगमंच पर लूडनडार्फ, क्लिमैन्सो और विल्सन तीन ऐक्टर अपने धुन में लीन दिखाई देते हैं। लूडन्डार्फ की तूती चारो ओर बोल रही थी, क्लिमैन्सो प्राणविहीन फ्रान्स को सजीवन मूरि सुंघा कर क़ैसर से बदला चुकाना चाहते थे स्वार्थरहित; निस्पृह विल्सन सत्य और न्याय का राग अलाप रहे थे। उस समय सन्धि की शर्तें दूसरी थीं। स्वभाग्य-निर्णय, समुद्रों की स्वतंत्रता का बाज़ार गर्म था। अलसेस-लोरेन का नाम लिया जाता था किन्तु यह साफ़ साफ़ कहा जाता था कि Saar Basin सार कुंड उसके साथ सम्मिलित न किया जायगा। क्योंकि उद्देश्य था १८७१ की भूल के सुधार का न कि १८१५ की। इटली को भी प्रदेश देने की बात नहीं कही जाती थी। ज़ेचोस्लाव और जूगोस्लाव का नाम भी नहीं सुनाई देता था। यह सब इसलिए था क्योंकि विल्सन आस्ट्रिया-हंगरी की

अखंडता की रक्षा करना चाहते थे। स्वराज्य पानेवाली जातियों में एक पोल्स का नाम लिया जाता था किन्तु पोलैण्ड के साथ लुथेनिया या युक्रेनियन प्रान्तों की चर्चा न थी। मित्रदल बातें बढ़ बढ़ कर कर रहा था किन्तु उसकी चलती कहीं न थी। विल्सन ने देखा, कुछ होना असम्भव है, जर्मनी को वे त्रस्त करना चाहते थे किन्तु यह उनकी ताक़त के बाहर था। सन्धि करने को वे तैयार थे किन्तु चाहते थे कि जर्मनी से दबना न पड़े। क्लिमैन्सो और लूडनडार्फ युद्ध का जुआ प्राणों की बाजी लगाकर खेल रहे थे। इसमें सम्भव था कि हारनेवाले का अस्तित्व भी शेष न रह जाता, रा० विल्सन इससे घबरा उठे थे और इसलिए सत्य का पीछा छोड़ कूटनीति, अन्याय और भेद का अस्त्र उन्होंने उठाया। अमरीकन सेनेट में व्याख्यान देते हुए चौथी दिसम्बर को उन्होंने कहा कि हम लोगों को आस्ट्रिया-हंगरी के साम्राज्य के खंडन या संगठन से कोई मतलब नहीं है, हम उनके घरेलू कार्यों में हस्तक्षेप करना नहीं चाहते। जनवरी के प्रथम या द्वितीय सप्ताह में मि० लायड जार्ज ने पार्लामेंट में व्याख्यान देते हुए इन्हीं भावों को प्रकट किया। इसका साफ साफ अर्थ था आस्ट्रिया-हंगरी को अपनी ओर आ जाने का निमंत्रण देना। ८ जनवरी को रा० विल्सन ने अमरीकन कांग्रेस में यह कहा कि १४ बातों की बिना पर जर्मन रेशटाग के बहुसंख्यक-दल से बातचीत करने को हम तैयार हैं। इन बातों का प्रभाव आस्ट्रिया-हंगरी और जर्मनी की जनता पर पड़ा। यूरोपीय नाटक का दूसरा दृश्य यहाँ पर समाप्त होता है।

(अभ्युदय १७ मई १९१९)

इटली और रा० विलसन।

दसवां परिच्छेद।

यूरोपीय महाभारत का तीसरा दृश्य बहुत ही कुतूहलमय, रहस्यपूर्ण और मनोरंजक है। इस समय में ही वे घटनाएँ घटी हैं जिनका संसार को पता नहीं और जिनको न जानने के कारण आज संसार यह समझ सकने में असमर्थ हो रहा है कि विजय-वैजयन्ती फहरानेवाले जर्मनी का एकदम से बिना तनिक भी विलम्ब के सहसा कैसे पतन हो गया? ताश के घर के समान एकदम से जर्मन साम्राज्य कैसे गिर पड़ा? १६१८ की सन्धि की शर्तों को देखने से यह प्रत्यक्ष है कि उस समय राजनीतिज्ञ

सुधार न कि पुनःसंगठन

करना चाहते थे। किन्तु जर्मनी लूडन्डार्फ़ की अध्यक्षता में कुछ और ही स्वप्न देख रहा था। वह यूरोप में, संसार में और

विशेषकर पूर्वीय देशों में जर्मन साम्राज्य स्थापित करना चाहता था। "हेम्बर्ग से बगदाद" का स्वप्न देखना छोड़ कर वह युक्रेनियन प्रान्त से काकेशस और अफ़गानिस्तान की माला जपने लगा था। मित्रदल के सैनिकों की संख्या इस समय जर्मन सैनिकों से अधिक थी। यद्यपि मार्शल फ़ाक शैम्पेन (Champagne) में हार गये थे किन्तु सैनिकों की संख्या इनके पास कहीं अधिक थी। यह सब देखकर मित्रदल ने अपनी नीति बदली, भेदभाव को उसने अपना प्रधान अस्त्र बनाया और शत्रुदल में तोड़-फोड़ करना उसको विजय का एकमात्र उपाय दिखाई देने लगा। रा० विलसन की वक्तृताओं का हम कह चुके हैं असर आस्ट्रिया-हंगरी और जर्मन जनता पर पड़ा था। आस्ट्रिया-हंगरी में राष्ट्रीयदल अनेक थे, वे हैप्सबर्ग और कैसर के घराने के कट्टर शत्रु थे। इनका एक मासिक पत्र "नव-यूरोप" के नाम से ज़ोरों से निकल रहा था। मित्रदल ने इन्हीं राष्ट्रीय दलों के साथ मैत्री स्थापित कर आस्ट्रियन और जर्मन साम्राज्यों को भीतर से भंग करना निश्चित किया।

१९१८ में काम शुरू हुआ।

आस्ट्रिया-हंगरी में बलवा कराना निश्चित हुआ। ज़ेचो-स्लाव और जूगोस्लाव यह दो प्रधान राष्ट्रीय दल वहां थे। इनको मिलाना और इनकी मांग को स्वीकार कर इनको अपने पक्ष में कर लेना मित्र-दल के लिए एकमात्र उपाय बाकी रहा था। किन्तु यह सहज न था। ज़ेचोस्लाव बड़े ही विद्वान् और उन्नतिशील थे। इनके पक्ष में यह एक बात और थी कि इनकी मांग जो थी उससे मित्र-दल के किसी स्वार्थ को

हानि नहीं पहुंचती थी। किन्तु जूगो-स्लाव का मामला कंटकमय था और अब तक बना हुआ है। इस समय जिस झगड़े के कारण सन्धि-परिषद् से इटली अलग हुआ उसकी जड़ उसी समय दिखाई दे गई थी। जूगो-स्लाव जो प्रान्त चाहते थे वह "लंदन की गुप्त-सन्धि" से इटली को मिल चुका था। इटली इन्हीं प्रान्तों की लालच से युद्ध में सम्मिलित हुआ था। इङ्गलैंड और फ्रांस ने सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किया था और वे अपने वचन के विरुद्ध काम नहीं कर सकते थे। भीषण कसौटी पर मित्रदल कसा जा रहा था। यूरोप और संसार के अधिवासी यह देख रहे थे कि मित्र-दल जो स्वभाग्य-निर्णय, किसी की भूमि पर कब्ज़ा न करेंगे आदि बड़ी बड़ी बातें कर रहा है वह कहां तक उनके लिए तैयार है। जूगो-स्लावों की मांग ने यह मसला उपस्थित किया था। यदि किसी की भूमि पर कब्ज़ा करने की आकांक्षा मित्र-दल को न थी तो इटली सहज में ही लंदन की सन्धि को भूल सकता था और जूगो-स्लाव जो प्रदेश चाहते थे वे उसे पा जाते किन्तु यह माऊं का ठौर था। इटली से कहे कौन कि प्रदेशों की लालच छोड़ो और कहा भी जाय और इटली राज़ी न हो तो जूगो-स्लाव बलवा न करेंगे। फल यह होगा कि आस्ट्रिया-हंगरी ज़बर्दस्त बना रहेगा। समस्या कठिन थी, इङ्गलैंड और फ्रांस बोल नहीं सकते थे, अमरीका बगलें झांक रहा था। फिर कूटनीति ने काम दिया। इटली के ही हाथ से उसके मुख से ग्रास निकालने की बात सोची गई। इटैलियनों से ही कहा जाने लगा कि मित्रदल और आस्ट्रियन राष्ट्रीय दलों में वे मैत्री स्थापित करा दें। चाल चल गई। इटैलियन पार्लामेंट के एक प्रधान सदस्य डा० टारी और जूगो-स्लाव नेता डा० ट्रम्बरिक के

बीच ७ मार्च १९१८ को एक समझौता हो गया । इटली के कुछ लिबरल दल के मनुष्य भी यह देख रहे थे कि यदि जूगो-स्लाव राज़ी नहीं किये जाते तो मित्रदल कभी जीत न सकेगा । ये डा० टारी के सहायक हो गये । फल यह हुआ कि अप्रैल में इटली की राजधानी रोम में आस्ट्रिया-हंगरी की त्रस्त जातियों की एक कांग्रेस हुई । प्रस्ताव यह पास किया गया कि आस्ट्रिया-हंगरी का अंगभङ्ग किया जाय । इटली के प्रधान सचिव ने कांग्रेस को साधुवाद कहा । यहां पर एक बात ध्यान में रखने की यह है कि इटली ने राष्ट्र की हैसियत से या सरकारी तौर पर कुछ नहीं कहा था और न लंदन की सन्धि पर उसने हड़ताल ही फेरी थी । मई मास के अन्त में अमरीका या रा० विल्सन ने ज़चो-स्लाव और जूगो-स्लावों की राष्ट्रीयता स्वीकार कर ली, किन्तु भाषा गोलमोल और अस्पष्ट थी । जून मास की वार्सेल्स की मित्रराष्ट्रों की सभा में बैरन सोनिनो-इटैलियन प्रतिनिधि ने यह साफ़ साफ़ कह दिया कि जूगो-स्लावों की मांग को स्वीकार करने को वह तैयार नहीं । उन्होंने अमरीकन मि० लान्सिङ्ग की गोलमोल भाषा में शरण ली थी । इधर झगड़ा आपस में हो रहा था उधर जूगो-स्लाव और ज़चो-स्लाव सेनाएँ जो अब तक आस्ट्रिया की तरफ से लड़ रही थीं आस्ट्रिया के खिलाफ़ हो गईं । मित्र-दल की कूटनीति का यह फल हुआ । एक तरफ़ यह हुआ दूसरी तरफ जून के अन्तिम सप्ताह में मि० लान्सिङ्ग ने साफ शब्दों में यह घोषणा की कि जूगो-स्लाव और ज़चो-स्लावों को स्वतंत्र करना, उनका राष्ट्रनिर्माण करना अमरीका का युद्ध में सम्मिलित होने का एक मुख्य उद्देश्य है ।

अगस्त मास में लार्ड नार्थक्लिफ़ ने एक बार फिर प्रयत्न

किया कि बैरन सोनिनो जूगो-स्लाव की राष्ट्रीयता स्वीकार कर लें। इसका फल यह हुआ कि इटली में एक भारी आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। इसी समय में इङ्गलैंड और अमरीका ने ज़ची-स्लावों का स्वतंत्र राष्ट्र स्वीकार कर लिया। एक ओर यह हुआ दूसरी ओर इटली ने जूगो-स्लावों की राष्ट्रीयता और उनकी मांग को स्वीकार कर लिया।

उपर्युक्त बातों से सन्धि-परिषद् से आजकल रोज़ जो इटली और रा० विल्सन के मनमोटाव के तार आते हैं उनको समझने में बहुत सहायता मिलती है। पाठकों को याद होगा कि इटली "फ़ायूम" का नाम लेकर सन्धिपरिषद् से अलग हो गया था। फ़ायूम के बन्दरगाह पर वह अपना कब्ज़ा चाहता है। वह "लन्दन की सन्धि" की दोहाई देता है, वह यह भी कहता है कि रा० विल्सन की चौदह शर्तों के अनुसार भी फ़ायूम उसे मिलना चाहिये। इङ्गलैंड और फ्रांस इटली के विरुद्ध कुछ कह नहीं सकते किन्तु इङ्गलैंड दबी ज़बान यह कहता था कि लंदन की सन्धि में अन्य प्रदेशों के देने का ज़िक्र है किन्तु "फ़ायूम" का नाम कहीं नहीं है। इटली कहता है फ़ायूम हम लेहींगे, फ्रांस अपने हस्ताक्षर की दोहाई देता है। रा० विल्सन सिद्धान्त, और अपने वचन का दम भर रहे हैं। इटली रूठ कर चला गया। बैरन सोनिनो का खूब धूमधाम से स्वागत हुआ। अब इङ्गलैंड और फ्रांस इटली को प्रसन्न करने पर तुल गये हैं। इङ्गलैंड और फ्रांस ने इटली से कहा है कि फायूम अभी १५ वर्ष तक तुम्हारे अधीन रहेगा किन्तु राष्ट्रसंघ उसका मालिक होगा। १५ वर्ष में स्लावों के लिए एक दूसरा बन्दरगाह तैयार हो जायगा। उस समय फ़ायूम का मालिक इटली बना दिया

जायगा । व्यवहारिक दृष्टि से इटली को मुँह मांगी मुराद मिलती है, वह राज़ी हो गया है और सन्धिपरिषद् में सम्मिलित होने के लिए तैयार है किन्तु रा० विल्सन अब तक अपनी बात पर अड़े हुए हैं । यह आजकल की बातें हैं किन्तु महाभारत का तीसरा पर्दा गिरता है वहां पर जहां पर जूगो-स्लाव और ज़चो-स्लाव आस्ट्रिया के विरुद्ध खड़े हो गये ।

(अभ्युदय २४ मई १९१९)

यूरोप में विप्लव की तैयारी

बोलशविज़्म का जन्म।

ग्यारहवां परिच्छेद।

"होता जो एक ज़ाहिरो बातिन तो खूब था।
सूरत कुछ और है तेरी सीरत कुछ और है॥"

रमूज़े सलतनत को हाकिमाने वक्त समझे हैं।
इशारा कुछ है आकिल से तो ईमां कुछ है जाहिल से॥

यूरोप विप्लव से खेलने और दिल बहलाने के लिए बेतहाशा दौड़ा चला जा रहा है क्योंकि उसके राजनीतिज्ञ यह नहीं समझ सकते हैं कि उनको क्या आशा करनी चाहिये, किस बात की उनको आवश्यकता है और इसलिए भी क्योंकि उनमें इतना साहस नहीं कि वे भविष्य में जैसा संगठन होना चाहिये, उस चित्र की ओर निहार भी सकें। सन्धिपरिषद् का एकमात्र कार्य और सर्व-प्रथम कार्य यह था और है कि यूरोप के निवासियों की भूख

की मार से वह रक्षा करे, उनको भोजन दे, उनको काम में, उद्योग-धन्धे में लगा दे और यूरोप के निवासियों में प्रेम का प्रसार करे। इसकी सफलता में जो बातें अड़चन डालती हैं वे राष्ट्र-विप्लव के लिए मार्ग साफ कर रही हैं। साधारण दैनिक जीवन और अवस्था स्थापित करने में यूरोप की गवर्नमेंटों के मार्ग में जो अड़चनें डाली जा रही हैं और जिनके कारण से यूरोप के राष्ट्र अपनी अध्यक्षता खोते जा रहे हैं वे सब उन लोगों को प्रोत्साहित करती हैं जो कहते हैं कि वर्तमान सरकारों का अन्त निकट है, वे कसौटी पर कसी गईं, खरी नहीं उतरीं और इनसे संसार की भलाई नहीं हो सकती। यह कहा जा रहा है और वर्तमान गवर्नमेंटों और शासकों से यूरोपीय भाइयों का विश्वास उठता जा रहा है किन्तु राजनीतिज्ञ और वहां के धनी जो शक्ति के पुजारी हैं और जो दूसरों के माथे मौज कर रहे हैं और करना चाहते हैं इन बातों की पर्वा न कर अपनी धुन में लगे हुए हैं। एक महाभारत समाप्त नहीं हो पाया है और उसी रङ्गशाला में एक दूसरा महाभारत शुरू हो गया है। पहिला महाभारत जो स्थगित हो गया है और जिसकी सन्धि की शर्तों पर विचार हो रहा है संसारव्यापी होते हुए भी पूर्ण रूप से संसारव्यापी नहीं था किन्तु अब जो थियेटर के भीतर थियेटर शुरू हुआ है वह पूर्ण रूप से संसार-व्यापी होगा। यह महाभारत रुपयेवालों, शक्ति के पुजारियों और श्रमजीवियों के बीच हो रहा है। रूस, जर्मनी, इङ्गलैंड, फ्रांस सभी देशों के श्रमजीवी धीरे धीरे एक हो रहे हैं, दूसरी ओर लक्ष्मी के कृपापात्र, जो वास्तव में इङ्गलैंड, फ्रांस, इटली, अमरीका और सभी सरकारों के प्रभु हैं अपनी सत्ता को अक्षुण्ण बनाये रखने का प्रयत्न कर रहे हैं। सन्धिपरि-

षद् में सम्मिलित राष्ट्र पूंजीवालों के हाथ में कठपुतली से नाच रहे हैं, स्वार्थ से वे प्रेरित हैं और स्वार्थ और साम्राज्य-विस्तार की वेदी पर वे संसार की भावी शान्ति का बलिदान कर रहे हैं। संसार की इस स्थिति में लूट के बटवारे के सिद्धांत का प्रयोग और यूरोप की काट छांट जिस समय कि ५० वर्ष के पूर्व की काट छांट के कारण उसके पोढ़ पोढ़ से खून बह रहा है, सरासर पागलपन है। इसीसे त्रस्त होकर बोलशविज़्म का ज़ोर यूरोप में बढ़ता जा रहा है किन्तु यूरोपीय राजनीतिज्ञ अपनी धुन में लगे हुए हैं। हमने पिछले परिच्छेद में लिखा था कि मित्र-राष्ट्रों ने आस्ट्रिया-हंगरी, जर्मनी आदि में भीतरी गड़बड़ और विप्लव कराना निश्चित किया था। इन लोगों ने जूगो-स्लावों और ज़चो-स्लावों को उभार कर तथा उनको एक स्वतंत्र राष्ट्र की लालच देकर आस्ट्रिया के विरुद्ध खड़ा कर दिया। इसका फल यह हुआ कि स्लाव फ़ौज आस्ट्रिया के शत्रुओं का मान मर्दन करने के स्थान पर आस्ट्रिया पर चढ़ दौड़ी। यूरोपीय महाभारत के

नाटक का चौथा दृश्य

यहीं से आरंभ होता है। अमरीका और इङ्गलैंड की इस घोषणा को सुनकर ही कि ये राष्ट्र ज़चोस्लावों का स्वतंत्र राष्ट्र स्वीकार करते हैं, वीयना में खलबली मच गई। इसका फल यह हुआ कि आस्ट्रिया ने संधि के प्रस्तावों को स्थगित कर दिया। आस्ट्रिया ने अगस्त मास में ही सन्धि की बातों का शुरू करना निश्चय कर लिया था; जर्मनी की अनुमति भी उसने इस संबन्ध में प्राप्त कर ली थी, सन्धि का मसौदा भी वास्तव में तैयार था किन्तु अमरीका और इङ्गलैंड की

चाल को देख कर जिसका वास्तव में अर्थ आस्ट्रिया-हंगरी के टुकड़े करना था सिवा चुप रह जाने के उसके लिए कोई दूसरा उपाय न था। सन्धि का मसौदा बना था डा० विल्सन की जनवरी को वक्तृता के आधार पर, जिसमें उन्होंने कहा था कि आस्ट्रिया-हंगरी के घरेलू मामलों में वे हस्तक्षेप करना नहीं चाहते किन्तु ज़ेचो-स्लावों को स्वतंत्रता स्वीकार करते ही दशा बिलकुल विपरीत हो गई और सन्धि का मसौदा बेमानी हो गया। दशा बिगड़ती देखकर आस्ट्रिया ने विवश होकर सितंबर के दूसरे या तीसरे सप्ताह में सन्धि का वही पुराना मसौदा पेश किया। एक ओर यह हो रहा था दूसरी ओर मित्र-दल बलगेरिया में भी कूटनीति का जाल बिछा रहा था। अभी तक साफ़ तौर से यह नहीं मालूम हुआ है कि मित्रदल ने बलगेरिया में कौन कौन सी चालें चलीं किन्तु यह प्रत्यक्ष है कि बलगेरिया के पतन से रोमानिया से हंगरी तक का रास्ता साफ़ हो गया। हंगरी संकट में पड़ गया और इसी समय में युक्रेन (Ukraine) ने बग़ावत का झंडा उठाया। एक ओर यह हुआ दूसरी ओर अमरीकन सेना ने अरगान जंगल और म्यूज़ नदी के बीच में जर्मन सेना पर विजय पाई। आक्रमण का उद्देश्य यह था कि लूडनडार्फ़ की सेना म्यूज़ नदी की ओर न रह सके और वहां से सुरक्षित स्थानों की मुर्चाबन्दी की छाया में बैठ कर सन्धि की शर्तें न करे। अमरीकन सेना का विजय होते ही रा० विल्सन की २७ सितंबरवाली महत्वपूर्ण वक्तृता हुई। अमरीकन सेना की लगातार विजय से लूडनडार्फ़ ने भी संधि का प्रस्ताव आरंभ किया और प्रिन्स मैक्स की गवर्नमेंट ने युद्ध स्थगित कर दिया। प्रिन्स मैक्स ने वही किया जो आस्ट्रिया कुछ ही सप्ताहों पहिले कर चुका था अर्थात्

उनके सन्धि के प्रस्ताव भी रा० विल्सन की जनवरी की स्पीच के आधार पर स्तम्भित थे। यह ध्यान में रखने की बात है कि प्रेसीडेण्ट विल्सन की चौदह बातों की बिना पर ही युद्ध स्थगित हुआ था किन्तु अब जो सन्धि की शर्तें हो रही हैं वे बिलकुल दूसरी बिना पर निर्धारित हैं। जर्मनी के युद्ध के स्थगित करते ही मित्रदल ने यह समझ लिया कि अब जर्मनी में कुछ नहीं रहा, वह हीन हो गया और उसकी बातों का रुख बदलने लगा। आरंभ में कहा जाता था कि क्षतिपूर्ति की रकम न कोई लेगा न कोई देगा, किसी की भूमि पर कोई कब्ज़ा न करेगा, अब ये बातें हवा हो गई हैं। इसका कारण क्या है? सब से पहिला कारण है विजय का मद, अभिमान, बदले की कभी न शान्त होनेवाली पिपासा, स्वार्थ, साम्राज्य-विस्तार की लालसा और इसके साथ ही साथ यह भाव कि जर्मनी ऐसा पीस डाला जाय कि फिर वह कभी सर न उठा सके, हमारे मार्ग में कोई कंटक न रहे और हम संसार के निर्देशक या निर्णायक हो जायँ। प्रभुओं, शक्ति के पुजारियों और पूंजीवालों की इच्छा यह है क्योंकि वे अपनी शक्ति खोना नहीं चाहते, क्योंकि वे नहीं चाहते कि वास्तव में प्रजातन्त्र संसार में स्थापित हो, साधारण प्रजा के साधारण स्थिति के प्रतिनिधि राजकाज का काम चलायें, क्योंकि ये प्रतिनिधि प्रजा के हित के कानून बनावेंगे और रुपयेवाले बैठे बैठे मोटे नहीं हो सकेंगे। जनता यह चाहती है। जनता जानती है कि अन्याय, सख़्ती और ज़ुल्म का नतीजा यह होगा कि शत्रुदल बाद में बदला अवश्य लेगा, मरना पड़ेगा साधारण मनुष्यों को, अमीर पूंजीवाले युद्ध से और धनी होंगे और उनको कोई क्षति न उठानी पड़ेगी इसीलिए रूस की जनता में

बोलशविज़्म का शीघ्रता से प्रचार हो गया । बोलशविज़्म है क्या, उसका उद्देश्य क्या है यह सब कहना कठिन है किन्तु यह निर्विवाद सत्य मालूम होता है कि बोलशविक यह चाहते हैं कि संसार में मान उन्हीं का हो, शासन उन्हीं के हाथ में हो और राष्ट्रों की नीति वेही तय करें जो उत्पादक हैं, जो श्रम-जीवी हैं और परिश्रमी हैं। साम्राज्यवादी, विजयमदंमत्त राष्ट्रों या यों समझिये कि पूंजीवालों के मार्ग में बोलशविज़्म का पहाड़ रूस ने एक दम खड़ा कर दिया और यहीं पर नाटक का चतुर्थ दृश्य समाप्त होता है। इस कांटे को निकाल बाहर करने के लिए पूंजीवालों ने क्या क्या किया, यूरोप के पुनः-संगठन पर इसका कैसा प्रभाव पड़ा और कूटनीति ने इसके कारण कौन कौन से रूप बदले यह अवसर से कभी हम दिखलाने की चेष्टा करेंगे ।

(अभ्युदय, ३१ मई, १९१९ ।)

यूरोपीय महाभारत का पांचवां दृश्य।

युद्ध के भीतर युद्ध

नूतन राष्ट्रों के स्थापित करने का रहस्य।

बारहवां परिच्छेद।

परदे के उठते ही हम देखते हैं कि रूस में बोलशविज़्म का दौरदौरा है और धीरे धीरे वह समस्त यूरोप में फैल रहा है। यह संसार में एक नूतन शासन-क्रम स्थापित करने का यत्न था। पराकाष्ठा के साम्यवादी-सिद्धान्त ही बोलशविज़्म के आधार-स्तम्भ थे। इससे संसार में निम्नश्रेणी के पुरुषों का या साधारण जनता का साम्राज्य स्थापित होता, पूंजी-वाले और अमीरों का मान जाता रहता, शासन में भाग वे ही ले सकते जो उत्पादक हैं, श्रमजीवी हैं और इसीसे पूंजी-वालों ने इसका विरोध करना निश्चय किया। युद्ध के भीतर

युद्ध, नाटक के भीतर नाटक शुरू हुआ । ज़ारडम के अन्त पर यदि मित्रदल रूसियों की सहायता करता तो बहुत कुछ सम्भव था कि रूस में कोई स्थायी सरकार स्थापित होजाती किन्तु यह होना नहीं था । इङ्गलैण्ड तथा फ्रान्स युद्ध के आरम्भ के समय ज़ार के मित्र थे, ज़ार की सहायता कर उसकी शक्ति को बढ़ा कर रूस और संसार में वे ज़ारडम की प्रभुता और शक्ति को बढ़ा रहे थे। कहने को उनको संसार से निरंकुश शासन और फ़ौजीपन उठाने की फ़िक्र थी किन्तु इसी निरंकुशता और फ़ौजीपन को वे रूस में शक्तिशाली बना रहे थे। लोग इस पर टीकाटिप्पणी करते थे, कोरी कोरी बातें भी सुना रहे थे किन्तु उस समय स्वार्थ इसमें था कि रूस साथ रहे नहीं तो फ्रान्स को कुचलते और इङ्गलैण्ड पर धावा करने में जर्मनी को कुछ समय न लगता । रा० विल्सन युद्ध में रूस के कारण ही नहीं सम्मिलित होते थे किन्तु इसकी भी कुछ अधिक पर्वा मित्रराष्ट्रों को न थी । रूसी अत्याचारों से त्रस्त थे, उन्होंने बलवा किया और ज़ारडम का अन्त हुआ। इङ्गलैण्ड ने मुक्तकंठ से प्रजा की पीठ ठोंकी । ज़ार के लिए आँसू बहानेवाला कोई नहीं दिखाई दिया, ज़ारडम के साथी स्वतंत्रता के उपासकों के साथी होगये । ज़ार के रक्त के चिन्ह भी पृथ्वी पर न सूख पाये थे कि ज़ार के मित्र ज़ार को सिंहासनच्युत करनेवालों के मित्र बन गये । इङ्गलैण्ड नव-रूस की बलैया लेने लगा। अमरीका भी क्षेत्र में आ गया । अमरीका स्वार्थ से या परमार्थ से युद्ध में सम्मिलित हुआ, वह क्या चाहता है, इतने दिनों वह अलग क्यों रहा और फिर वह सम्मिलित क्यों हुआ इन सब बातों पर प्रकाश डालने की हम कभी चेष्टा करेंगे । अब तक यह

नहीं होता तब तक पाठक यही समझे रहें कि रूस के कारण अमरीका अलग रहा और ज़ारडम के अन्त के साथ ही वह मैदान में आगया। मित्रराष्ट्रों ने नवरूस का स्वागत किया था। उनका कर्तव्य था कि क्रान्तिकारियों को पूरी सफलता लाभ करने में सहायता देते। निरंकुशता और फ़ौजीपन के शत्रुओं का धर्म यही था किन्तु यह हुआ नहीं। नव-रूस नई राह संसार को दिखलाने को उतावला था, वह कूटनीति, चालबाज़ियें, गुप्त-सन्धियें, दूसरे के ज़मीन हड़पने आदि के विरुद्ध था। उसमें नवीन मतावलम्बी का जोश था। इङ्गलैंड, तथा फ्रान्स उसका कैसे साथ दे सकते थे? इतिहास अपने को दोहराने लगा। हम पहिले तीसरे परिच्छेद में दिखला चुके हैं कि सन्धि-परिषद् आदि बातें पहिले भी हो चुकी हैं और वास्तव में इस समय यूरोप इतिहास का पुराना पाठ पढ़ रहा है, आज इसी बात का एक दूसरा नमूना भी देख लीजिये। आज जो रूस में हो रहा है और रूस के साथ जैसा व्यवहार किया जा रहा है बिलकुल इसी तरह से पहिले फ्रान्स के साथ भी हो चुका है। फ्रान्स में क्रान्ति हुई थी और क्रान्ति बड़े ज़ोरों की थी। क्रान्ति बिलकुल ऐसी ही थी जैसी कि आज रूस में है। इन क्रान्तियों में एक बात ध्यान में रखने की है और वह यह कि यह उस शक्ति के सहारे चलती हैं जो आन्तरिक जलन से पैदा होती है। प्रजा का त्रस्त होकर स्वतंत्र होने के लिए उद्योग करना और आपस की मारकाट इन क्रान्तियों के आधार स्तंभ होते हैं। फ्रांस में लेजिस्लेटिव एसम्ब्ली को शक्तिशाली बनाने के लिए स्टेट्स जेनरल (States General) भस्मीभूत किया गया, काम चलता नज़र न आता दिखाई देने पर लेजिस्लेटिव एसम्ब्ली

की चिता पर कानवेन्शन और कम्यून का सिंहासन जमाया गया, अन्त में कानवेन्शन की अन्त्येष्टिक्रिया कर (Committee of Public Safety) "कमेटी आव् पब्लिक सेफ़्टी" सार्वजनिक रक्षा कमेटी स्थापित की गई। रूस में भी ऐसी ही एक के बाद दूसरी संस्थाएँ स्थापित हुईं और 'कमेटी आव् पब्लिक सेफ़्टी' का स्थान बोलशविज़्म को प्राप्त हुआ है। फ्रांस में वर्गनियाड को डैन्टन के सामने सर झुकाना पड़ा, और डैन्टन को बाद में रोब्सपीरी के सामने दब जाना पड़ा, ठीक उसी तरह से आधुनिक रूस में Lvoff लाफ़ को केरन्सकी के सामने और केरेन्स्की को लेनिन के सामने हट जाना पड़ा है। यह ऊपरी बातें हैं किन्तु क्रान्तियों पर जिन्होंने तनिक भी विचार किया है उनसे यह छिपा नहीं कि जलन, आन्तरिक अत्याचार, गड़बड़ यह सब क्रान्ति की उत्पत्ति के कारण मात्र हैं, ये उसमें शक्ति भी प्रदान करते हैं किन्तु आन्तरिक गड़बड़ और शक्ति का Explosive विस्फोटक का रूप धारण करना केवल बाहरी दबाव पर निर्भर होता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि फ्रेंच क्रान्ति केवल आस्ट्रिया और जर्मनी के हस्तक्षेप के कारण भीषण रूप धारण कर अपने पथ से विचलित हो गई और इस प्रकार से अपने उद्देश्य से दूर हो गई। ऐतिहासिकों का कहना यह भी है कि इङ्गलैंड ने फ्रांस को कुचलने में आस्ट्रिया और जर्मनी का साथ देकर फ्रांस में Reign of Terror भीषण रक्तपात और भय के साम्राज्य को जन्म दिया। बाहरवालों के दबाव से, उनकी चालबाज़ियों और कूटनीतियों के कारण हीन और कमज़ोरों के अच्छे से अच्छे काम बुरे से बुरे रूप धारण कर लिया करते हैं। क्रान्तियों के इतिहास का यह एक दुःखान्त सत्य है।

संसार माने या न माने किन्तु यह एक निर्विवाद सत्य है कि आधुनिक संसार उसी समय एक नूतन पद पर अग्रसर हुआ जिस समय कि इङ्गलैंड ने बर्क की सलाह में आकर फ्रांस की सहायता करना छोड़ क्रांति के शत्रुओं—आस्ट्रिया और जर्मनी—का साथ दिया। उस समय के फ्रान्स और आधुनिक रूस की स्थिति एक समान है और १७६४ और १६१६ के मित्रदल के उद्देश्यों में भी बहुत कुछ समानता है। रूसी क्रांति की भांति फ्रेंच क्रांति का भी समस्त यूरोप और विशेषकर इङ्गलैंड में बड़ी धूम से स्वागत हुआ था। आज की भांति उस समय में भी कहा गया था कि स्वतंत्रता की ओर यह मानव-समाज का अग्रसर होना शुभकर होगा। फ़ाक्स ने यहाँ तक कहा था कि फ्रांस के स्वतंत्र प्रजातंत्र को यूरोपीय शासक-मंडल में मिला लिया जाय और बराबर वाले के समान उसका आदर किया जाय। किन्तु हुआ कुछ नहीं। मित्रता का कहना ही क्या, इङ्गलैंड ने फ्रांस से पूरी शत्रुता की। अन्य राष्ट्रों के हस्तक्षेप के कारण फ्रांस में Reign of Terror रक्तपात और मारकाट का साम्राज्य स्थापित हो गया, नेता पदच्युत और पतित हुए। मानव-समाज में उनको कहीं स्थान न मिला और फ्रांस में रक्त की नदियां बह गईं। जिस तरह बर्क राजा की हत्या करनेवालों से सन्धि न स्थापित करने का चीत्कार मचा रहे थे उसी तरह से आज फ्रांस के M. Pinchon मोशिये पिंचन बोलशविकों से दूर रहने की दोहाई दे रहे हैं। जिस प्रकार अन्य राष्ट्रों के हस्तक्षेप के कारण फ्रांस को लड़ने के लिए विवश होना पड़ा था और फ्रांस का नूतन राष्ट्र डवांडोल था आज वही दशा रूस की हो रही है। उस समय राष्ट्रों के हस्तक्षेप के कारण फ्रांस में नेपोलियन का सैनिक

आधिपत्य स्थापित हो गया था और आज भी बहुत कुछ सम्भव है कि रूस और जर्मनी में कोई सैनिक नायक बन बैठे ।

यह ऐतिहासिक सत्य है किन्तु इससे स्वार्थ को धक्का पहुंचता है इस कारण संसार के "हम" में चूर राष्ट्रों को इसकी चिन्ता नहीं । वे अपनी धुन में लगे हुए हैं, वे क्रान्तिकारियों को दबाना चाहते हैं, वे चाहते नहीं कि उनको सफलता प्राप्त हो क्योंकि रूस की क्रांति की सफलता का प्रभाव समस्त यूरोप पर पड़ेगा और इसका अर्थ यह होगा कि जो इस समय शक्तिशाली हैं उनकी सत्ता जाती रहेगी । समस्त यूरोप में शासनक्रम का नूतन संस्कार होगा । मित्रराष्ट्रों की दृष्टि में यह भयावह होगा और इसलिए उन लोगों ने नव-रूस को नेस्तनाबूद करना निश्चित किया । यह तय हुआ कि मित्र-राष्ट्र रूस पर चढ़ाई कर दें और उसे कुचल डालें । सेनाएँ चढ़ दौड़ीं किन्तु कुछ ही समय में मालूम हुआ कि यह सहज नहीं । एक नई अड़चन यह भी पड़ी कि अमरीकनों को यह पसन्द न था कि रूस के सुधार के लिए पांच सात लाख अमरीकन नवयुवक रूस के विस्तृत बर्फ़िस्तान में दस वर्षों तक पड़े रहें । यह देखकर कि अमरीकन सेना रूस की सैर नहीं करना चाहती और अङ्गरेज़ी और फ्रेञ्च सेना अकेले रूस में बहुत दिनों तक पुलीस का काम नहीं कर सकतीं विवश होकर राजनीतिज्ञों ने एक नई चाल चलना आरंभ किया ।

नव-राष्ट्रों की उत्पत्ति का रहस्य ।

जिस समय कहीं अग्नि लगती है और उसका विस्तार रोकना ज़रूरी होता है तो किया यह जाता है कि आस-पास के स्थानों से उसका लगाव तोड़ दिया जाता है । इसी

तरह से जब पानी का विस्तार या बहाव रोकना होता है बांध (Dam) खड़े किये जाते हैं जिसमें पानी आगे न बढ़ने पावे। मित्रराष्ट्रों ने इसी तरह से बोलशविज़्म के प्रवाह को रोकना निश्चित किया। उसको समूल नष्ट करना सहज न था यद्यपि रूस के संहार के लिए मि० चर्चिल इस समय भी दस लाख की सेना तैयार कर रहे हैं। प्रवाह रोकने के लिए, या विषैली हवा के झोकों को दूर रखने के लिए जिसमें उनका असर और न फैले (Sanitary cordon) स्वास्थ्यकर घेरे के सिद्धान्त की शरण ली गई। तय हुआ कि बोलशविक रूस, कम्यूनिस्ट हंगरी और स्पार्टैसिस्ट जर्मनी के चारों ओर स्वास्थ्यकर घेरे अर्थात् छोटे छोटे स्वतंत्र प्रजातंत्र स्थापित किये जायँ। साथ ही साथ राइन प्रदेश का एक बांध बनाया जाय और हालैण्ड और बेलजियम के कुछ खंडों को तोड़ फोड़ कर एक बांध उधर भी डाल दिया जाय। इन बांधों या घेरों की रक्षा का भार इङ्गलैण्ड और अमरीका अपने ऊपर लें, दिखलाने को राष्ट्र-संघ का ढकोसला रहे किन्तु वास्तव में अमरीका और इङ्गलैण्ड की सन्धि स्थापित हो। यह दोधरी तलवार की नीति है। इन राष्ट्रों के निर्माण से जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी और रूस का पहिले ही खंडन होगा और इस तरह से वे कमज़ोर होंगे, दूसरे यदि वे लड़ने को आमादा होंगे तो पहिली बार स्वतंत्र छोटे छोटे राष्ट्र रोकेंगे, जिनको स्वतंत्रता प्यारी है और इस तरह से इङ्गलैण्ड और फ्रांस को पहिले ही रणक्षेत्र में न आना पड़ेगा। एक दूसरी बात इससे यह भी होगी कि फ्रान्स, इटली आदि की सीमा जर्मनी, रूस आदि से भिड़ी न होगी कि एकदम उनपर आक्रमण करना सहज हो। इसी सिद्धान्त की सिद्धि के लिए यूरोप में पोलैण्ड

ज़ेचो-स्लाव, जूगोस्लाव, ग्रेटर रोमानिया आदि स्वतंत्र राष्ट्र स्थापित किये जा रहे हैं। राजनीति में उदारता, सत्य के प्रेम, और न्याय को जो स्थान देते हैं वे समझें कि रा० विल्सन उदारतावश, छोटी जातियों की हीनावस्था पर तरस खाकर या स्वतंत्रता के प्रेम में पागल होकर छोटी जातियों के उद्धार के लिए ये राष्ट्र क़ायम कर रहे हैं किन्तु हम तो यही जानते हैं कि स्वार्थ की पूजा सर्वोपरि है। इसी कारण से सन्धि की शर्तें नितप्रति हवा के झोंके के साथ बदलती रही हैं। नाटक के प्रत्येक दृश्य में एक नूतन सिद्धान्त को जन्म मिला है और हमारी समझ में रा० विल्सन की चौदह बातें केवल स्मरण-शक्ति की परीक्षा के लिए रह गई हैं। इसीलिए "हम किसी की भूमि पर कब्ज़ा न करेंगे" साम्राज्यों का खंडन न होगा," और "क्षतिपूर्ति की रक़म न ली जायगी" यह बातें अब नहीं सुनाई देती हैं। आरंभ में केवल यह कहा जाता था कि जर्मनी से अलसेस-लोरेन लिया जायगा किन्तु अब रोज़बरोज़ एक नये प्रदेश के स्वतंत्र करने की अनिवार्य आवश्यकता प्रकट हो रही है। अस्तु। इस नूतन सिद्धान्त के सम्बन्ध में हम इतना ही कह देना चाहते हैं कि यह मूर्खतामय है, हानिकर सिद्ध होगा और स्थायी नहीं हो सकता। जिसे यूरोप की आभ्यन्तरिक दशा का कुछ भी ज्ञान है वह सहज ही में समझ सकता है कि जर्मनी और रूस की भीषण क्रान्तियों में ये छोटे छोटे राष्ट्र पिस जायँगे और इनका कहीं निशान भी न दिखाई देगा। इसके सिवा ये छोटे छोटे राष्ट्र बड़े बड़े साम्राज्यों के टुकड़े हैं, इनमें जो मनुष्य इस समय प्रधान हो रहे हैं और जिनको मित्रराष्ट्र अंगुली के इशारे पर नचा रहे हैं पुराने विचारों के कट्टर

साम्राज्यवादी हैं, कूटनीति, स्वार्थ की पूजा, गुप्त-सन्धियों का करना इनका पेशा है और ऐसे संकट के समय में ये नूतन राष्ट्रों की नौका को खे कर नहीं ले जा सकते। तीसरे ये सब आपस में इसी समय में लड़ रहे हैं। सभी सीमा प्रदेशों पर किसी न किसी रूप में मारकाट जारी ही है और इन राष्ट्रों का अस्तित्व भी उसी समय तक है जब तक कि राइन प्रदेश में अङ्गरेज़ो और फ्रंच सेनाएं पड़ी हैं। यह बहुत दिनों तक नहीं चल सकेगा। जो मनुष्य यह समझता है कि इङ्गलैंड, निवासी और फ्रांस निवासी राइन प्रदेशस्थित सेनाओं के भरणपोषण का भार अपने माथे लिये रहेंगे, वह भूल करता है। ऐसी अवस्था में स्वास्थ्यकर घेरों या बांधों का अस्तित्व बहुत दिनों के लिए नहीं हो सकता। एक बात इस सम्बन्ध में और ध्यान में रखने की है। पाठक आजकल यह पढ़ते होंगे कि बेलजियम सन्धि-परिषद् के फ़ैसले से असन्तुष्ट है। इसका रहस्य भी मज़ेदार है। साथ ही यूरोपीय इतिहास अपने को दोहरा रहा है, उसका यह नया उदाहरण भी है। हम ऊपर लिख चुके हैं कि एक स्वास्थ्यकर घेरा या बांध हालैंड और बेलजियम के कुछ खंडों को मिलाकर डाला जा रहा है। इसी घेरे की दोहाई देकर बेलजियम सन्धि-परिषद् से असन्तुष्ट है और पिछले ही सप्ताह में यह खबर आई थी कि बेलजियम चाहता है कि १८३६ के अनुसार उसकी सीमा स्वीकार की जाय। बेलजियम डच प्रदेश अर्थात् हालैंड का कुछ अंश अपने राज्य में मिलाना चाहता है।

बात असल में यह है

फ्रांस का ज़ोर कम करने को उस समय को सन्धि-परिषद् ने

फ्रांस के उत्तर में एक शक्तिशाली डच साम्राज्य स्थापित करना चाहा था ठीक उसी तरह से जिस तरह से कि आज-कल की सन्धि-परिषद् जर्मनी का ज़ोर कम करने को स्थान स्थान पर घेरे डाल रही है। उस समय में बेलजियम और हालैंड के विरोध की परवा न कर दोनों राज्य एक कर दिये गये थे और डच राजा से कहा गया था कि वह एक ज़बर्दस्त सेना तैयार करे। फ्रांस को काबू में रखने के लिए फ्रांस के उत्तर में यह शक्तिशाली शत्रु खड़ा किया गया था। उस समय बेलजियम का कुछ अंश हालैंड को मिल गया था। अब भय का स्थान फ्रांस नहीं वरन् जर्मनी हो गया है, अब जर्मनी को घेरे में रखना है। इसलिए बेलजियम को शक्तिशाली बनाना आवश्यक है। फ्रांस का शासक-मंडल इसलिए डच कांग्रेस की कानों के प्रदेशों को बेलजियम को देना चाहता है बेलजियम भी चिल्ला रहा है कि हालैंड के कुछ प्रदेश उसको मिल जायँ और इसी कारण से वह १८३९ की सीमा की दोहाई दे रहा है। हमको इतना ही कहना है कि यूरोप अपने कर्मों का फल भोग रहा है। वीयना की सन्धि परिषद् में जो उसने किया था उसका फल अब वह भोग रहा है, और अब जो सन्धि-परिषद् में वह कर रहा है इसका भी फल वह शीघ्र ही भोगेगा। (अभ्युदय, ७ जून, १९१९।)